संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषि प्रसाद

वर्ष : १४
अंक : १२७
जुलाई २००३
आषाढ़-श्रावण
वि.सं. २०६०

हिन्दी

गुरुपूर्णिमा विशेषांक
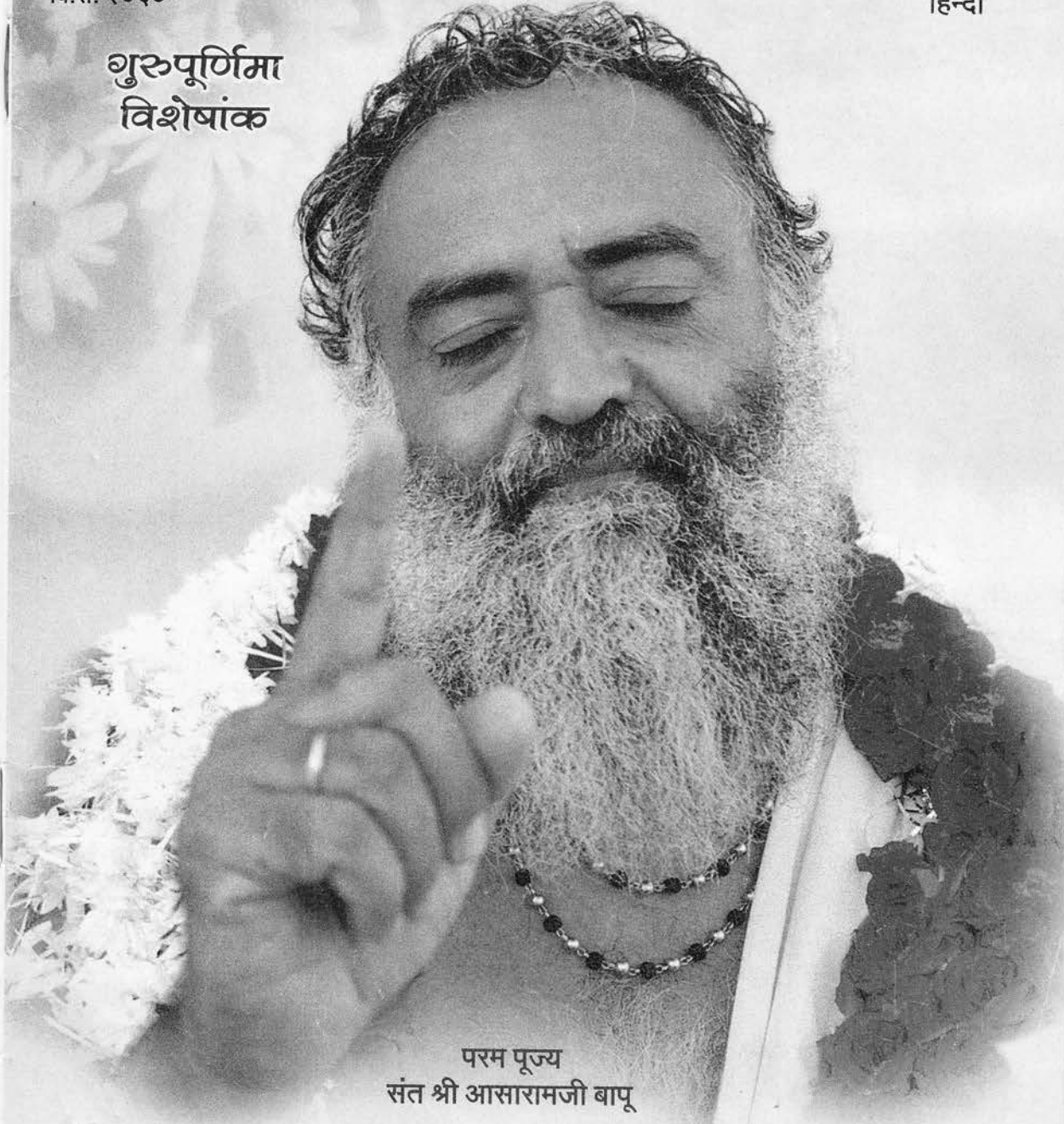
परम पूज्य
संत श्री आसारामजी बापू

एक प्रभु को छोड़कर, जो भटके जग मांहिं।
तो आखिर पछताओगे, इसमें संशय नांहिं ।।

जल गयी ज्योत फैला प्रकाश, न रहा भान, जग गया ज्ञान।
कानपुर में आन प्रभु दिया ज्ञान, हम धन्य हुए करुणानिधान ॥

गोण्डा (उ.प्र.) में पूज्य बापूजी के सत्संग का रसास्वादन करता और भक्तिरस में झूमता हुआ विशाल जनसमुदाय।

ऋषि प्रसाद

वर्ष : १४

अंक : १२७

९ जुलाई २००३

आषाढ़-श्रावण, विक्रम संवत् २०६०

मूल्य : रु. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत में

(१) वार्षिक : रु. ५०/-

(२) पंचवार्षिक : रु. २००/-

(३) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में

(१) वार्षिक : रु. ७५/-

(२) पंचवार्षिक : रु. ३००/-

(३) आजीवन : रु. ७५०/-

विदेशों में

(१) वार्षिक : US $ 20

(२) पंचवार्षिक : US $ 80

(३) आजीवन : US $ 200

कार्यालय **'ऋषि प्रसाद'**

श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम,
संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-३८०००५.

फोन : (०७९) ७५०५०१०-११.

e-mail : ashramindia@ashram.org

web-site : www.ashram.org

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम

प्रकाशक और मुद्रक : कौशिक वाणी

प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-३८०००५.

मुद्रण स्थल : हार्दिक वेबप्रिंट, राणीप और विनय प्रिंटिंग प्रेस, अमदावाद।

सम्पादक : कौशिक वाणी

सहसम्पादक : प्रे. खो. मकवाणा

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रम

बापूजी की शरण में मिले ज्ञान

बापूजी की शरण में, मिले स्वरूप का ज्ञान।
सत्संगति का सब करो, नित्य सुधारस पान ॥
ऐसा भक्ति का रंग लगाते,
जग के बंधन से छुड़ाते ।
होती सत् की पहचान... बापूजी की०

भक्तों पर निशदिन उपकार हैं करते,
लाखों को भवपार हैं करते ।
छोड़ें कभी न मझधार... बापूजी की०

नित्य ज्ञान की बातें सुनावें,
दुःख अज्ञान को दूर भगावें ।
हो जाता फिर कल्याण... बापूजी की०

बापू-सा उपकारी न संत,
अज्ञान, मोह का करें ये अंत ।
सत्य का होता भान... बापूजी की०

बापू जब सत्संग सुनाते,
जन क्या देव भी सुनने आते ।
सुनते सत्संग करते ध्यान... बापूजी की०

बापू का है प्रेम निराला,
चखता कोई भाग्यवाला ।
सब सद्गुणों की खान... बापूजी की०

बापू ही जीवन प्राण हमारे,
पूज्य गुरुदेव भगवान हमारे ।
आज से जाओ शरण महान... बापूजी की०

बापूजी की कृपा जो पाता,
कंकड़ भी हीरा हो जाता ।
सब भक्तजनों की ये खान... बापूजी की०

सत्य की पहचान करावें,
पूज्य लीलाशाहजी की कथा सुनावें।
मन कर शत शत प्रणाम... बापूजी की०

- ज्योति कपूर, रोहतक (हरियाणा).

गुरु-वंदना

परम पूज्य हे गुरुवर मेरे,
हरि-हर-विधि भी वंदे तेरे।
आया शरण हरो अघ मेरे,
काटो जन्म-मरण के फेरे ॥

वर्णन करूँ कहाँ तक मैं,
सद्गुरु महिमा अपरंपार ।
जिसको गाते थकीं शारदा,
वेद थके सब 'नेति' पुकार ॥

सद्गुरु पद से ऊपर,
और नहीं कोई ऊँचा है ।
ब्रह्म स्वरूप गुरुवर को झुके,
ये ब्रह्मांड समूचा है ॥

अलख निरंजन जब धरती पे,
रूप रचाकर आता है ।
वह भी गुरुवर, कर जोड़े,
सद्गुरु को शीश झुकाता है ॥

जिसकी सत्ता से जड़ भी,
शक्ति-पुंज बन नृत्य करे।
गुरु तो पूरण रूप वही,
जो क्षण में कृतकृत्य करे ॥

- अशोक सिंह राजपूत

श्रीराम और रावण का रास्ता

रावण जिस वस्तु को छूता है, धिक्कार की पात्र हो जाती है और श्रीराम जिस वस्तु को छू देते हैं वह पूजने योग्य हो जाती है । क्यों ? रावण अहंकार का आखिरी छोर है और श्रीराम विसर्जन का आखिरी छोर हैं।

जो अहंकार को पोषकर-सजाकर उसके अनुसार जीते हैं वे समझो, रावण के रास्ते पर हैं। वे केवल स्थूल शरीर के भोग भोगने में ही सारा आयुष्य पूर्ण कर देते हैं । परंतु जो अहंकार का विसर्जन करके आत्मारामी ऋषियों के उपदेश के अनुसार जीवन जीते हैं वे समझो, भगवान श्रीराम के रास्ते पर हैं । वे परमात्मा को पाने में अवश्य सफल हो जाते हैं ।

क्रिया बाहर, फल भीतर !

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

हमारे प्राचीन वेदान्त-शास्त्रों का कहना है कि क्रिया बाहर करो और फल भीतर पाओ । आज का विज्ञान कहता है कि कोशिश भीतर करो और फल बाहर लो अर्थात् फल तुम्हारे स्थूल शरीर को मिले । तुम मेहनत करो और तुम्हारे मरनेवाले शरीर को सुविधा मिले ।

शास्त्र कहते हैं कि स्थूल शरीर से कोशिश करो और फल तुम्हारे जीवात्मा को मिले क्योंकि तुम शरीर नहीं हो, शरीर तुम्हारा साधन है । मरनेवाले शरीर से शुभ कर्म करो और फायदा तुमको मिले । प्रयत्न बाहर करो, फल भीतर पाओ । जैसे सेवा बाहर की, किंतु शांति, संतोष और प्रसन्नता भीतर मिली । ध्यान-भजन, तीर्थयात्रा आदि शरीर ने किया किंतु फल अंतःकरण को मिला।

बाहर के साधनों से भीतर का फायदा लेना यह आध्यात्मीकरण है । भीतर अपनी बुद्धि लड़ा-लड़ाकर बुद्धिमान तो बहुत हो जाते हैं, किंतु इस बुद्धिमानी के साथ भगवत्प्राप्ति का भाव भी मिला लिया जाय, इस अक्ल का उपयोग यदि सत्य की प्राप्ति के लिए किया जाय तो वह सत्संग अर्थात् सत्यस्वरूप ईश्वर का संग करा देगी । किंतु बेचारा बुद्धिजीवी अपनी अनमोल बुद्धि को खर्च करके नश्वर शरीर की सुविधा बढ़ा रहा है । जिस शरीर को जला देना है उसीको सुविधा दिलाने में सारी बुद्धि खर्चना कहाँ की बुद्धिमानी है ? बुद्धिमानी तो यह है कि अच्छे-में-अच्छा जो परमात्मा है, उसमें विश्रांति पाकर हम सदा के लिए मुक्त हो जायें ।

कबीरजी ने कहा है :

पढ़-पढ़कर पत्थर भया, लिख-लिख भया है चोर ।
जा पढ़नी ते साहिब मिले, वह पढ़नी कछु और ॥

उठो, जागो और उन ज्ञानी महापुरुषों की शरण में जाओ जो तुम्हें बाहर से भीतर ले आयें । जन्म-मरण के बंधनों से छुड़ाकर मोक्ष की ओर, उलझनों से छुड़ाकर आत्मसुख की ओर ले आयें ।

तुम बाहर का धन, शक्ति, विद्या आदि कितना बटोरोगे और कितना सँभालोगे ? सत्यस्वरूप परमात्मा को पाने के लिए इन सबका जितना अधिक सदुपयोग करते जाओगे, उतना ही अधिक कल्याण होता जायेगा ।

शरीर से अति परिश्रम करोगे तो वह बीमार पड़ेगा और साधन-भजन के काबिल नहीं रहेगा । यदि शरीर को ज्यादा आराम दोगे तो भी आलसी बन जायेगा और साधन-भजन के योग्य नहीं रहेगा । लोग बोलते हैं कि 'लगे रहो, लगे रहो...' किंतु काम करने के पहले आराम होता है और काम करने के बाद भी आराम होता है तो काम भी ऐसा करो जो अंतर्यामी राम में आराम दिलानेवाला हो, दुःख का भय और सुख की आसक्ति मिटानेवाला हो ।

करने का राग और न करने का द्वेष मिट जाय तो काम करने में भी आप आराम पाने लगोगे ।

जगत का ऐसा कोई संयोग नहीं है जिसमें वियोग न छुपा हो । ऐसा कोई भोगसुख नहीं है जिसके पीछे दुःख, भय और रोग न हो । तुम न सुख से चिपको, न संयोग से । संयोग और सुख आ गये तो आ गये, चले गये तो चले गये... तुम उनके लिए चीखो-चिल्लाओ मत, रोओ मत, सिर मत पटको । यह परमात्मा की लीला है, ऐसा होता रहता है - ऐसा समझकर शांत हो जाओ । जो वियोग से नहीं डरता उसको नित्य आत्मसंयोग के सुख की प्राप्ति होती है अथवा तो जो वियोगरूपी देवता को आमंत्रित करता है वह शाश्वत संयोग के परम धन तक पहुँच जाता है ।

सो ही ज्ञानी सो ही गुनी, सो ही दाता ध्यानी ।
तुलसी जाके चित्त भयी, राग द्वेष की हानी ॥

'जिसके चित्त से राग-द्वेष चला गया वही गुणवान है, वही दाता है, वही ध्यानी है और वही ज्ञानी है ।'

(क्रमशः)

पुरुषार्थ क्या है ?

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

पुरुषार्थ क्या है ? **पुरुषस्य अर्थः यत्न इति पुरुषार्थः ।** पुरुष तो एक परमात्मा है, उसके अर्थ यत्न करें । सेवा करें तो परमात्मा की प्रसन्नता के लिए, परमात्म-प्राप्त गुरुदेव की कृपा पचाने के लिए करें । ध्यान करें तो परमात्मा की प्रीति के लिए करें। स्मरण करें तो भगवान का करें ।

'श्री योगवाशिष्ठ महारामायण' में आता है कि 'सत्शास्त्रों के वचनों एवं युक्तियों के अनुसार यत्न और अभ्यास करके आत्मपद को प्राप्त होने का नाम पुरुषार्थ है । जैसे प्रकाश से पदार्थ का ज्ञान होता है, वैसे ही पुरुषार्थ से आत्मपद की प्राप्ति होती है । यदि कोई मनुष्य पूर्व कर्मानुसार बड़ा पापी हो तो यहीं पुरुषार्थ करने से वह इसी जन्म में पूर्व के संस्कारों को जीत लेता है । जैसे बड़े-बड़े मेघों को पवन नष्ट कर देता है और वर्षभर की पकी फसल को बर्फ नष्ट कर देती है, वैसे ही पुरुष के पूर्व के संस्कार पुरुषार्थ से नष्ट हो जाते हैं ।'

यहाँ वाल्मीकिजी भारद्वाजजी से और वशिष्ठजी रामजी से कहते हैं कि 'मनुष्य को पुरुषार्थ करना चाहिए । पूर्व का कैसा भी कर्म हो, कैसा भी प्रारब्ध हो, अभी पुरुषार्थ करके अपने पूर्व के संस्कार जीतकर भविष्य उज्ज्वल बनाना चाहिए ।'

तुलसीदासजी ने कहा है :

बिगड़ी जनम अनेक की, सुधरे अब और आजु ।
तुलसी होई राम को, राम भजी तजि कुसमाजु ॥

अनेक जन्मों से जो मति, गति, धारणा, वृत्ति बिगड़ी है वह अभी और आज ही सुधर सकती है । कैसे ?

भगवान के होकर भगवान का भजन करो ।

पुरुषार्थ अर्थात् किसी हाड़-मांस के पुतले के लिए प्रयत्न नहीं करना है । 'उसके लिए ऐसा करूँगा तो वह मुझे सुख देगा... उससे अपने जूठे बर्तन न मँजवाये तो मेरा नाम नहीं...' यह सब पुरुषार्थ नहीं, देहार्थ है ।

जितना-जितना सच्चा पुरुषार्थ होगा उतना-उतना सच्चा सुख मिलेगा और जितना-जितना काल्पनिक पुरुषार्थ होगा उतना-उतना काल्पनिकता में उलझेंगे । अपने को देह में आबद्ध करने की बेवकूफी छोड़ें और आत्मा-परमात्मा से प्रीति करें । आत्मा-परमात्मा विषयक ज्ञान का श्रवण, मनन व निदिध्यासन करें ताकि अविद्या छूट जाय और आत्मपद की प्राप्ति हो ।

वशिष्ठजी महाराज कहते हैं : 'हे रामजी ! आत्मविश्रांति के सिवाय जीवों को आनंद न तप से, न दान से और न ही तीर्थों से प्राप्त होता है । जब आत्मस्वभाव के दर्शन होते हैं तब भोगों से विरक्तता उपजती है । पर आत्मस्वभाव के दर्शन अपने पुरुषार्थ बिना और किसी युक्ति से नहीं होते ।'

भोगी की अपेक्षा त्यागी अच्छा है । विलासी की अपेक्षा तपस्वी अच्छा है । स्वार्थी की अपेक्षा दानी अच्छा है क्योंकि वह दान करके इहलोक में औदार्य-सुख पायेगा और परलोक में भी सुखी होगा । किंतु परम पद परमात्मा को, शाश्वत सुख को पाना सर्वोपरि है और उसके लिए अपना दृढ़ पुरुषार्थ चाहिए ।

मोक्ष का अर्थ है सब दुःखों से सदा के लिए छुटकारा । जहाँ दुःख, शोक और जन्म-मृत्यु की दाल नहीं गलती, उस अपने आत्मस्वभाव को पहचानने के लिए यत्न करें ।

'हे रामजी ! इसीलिए पुरुष-प्रयत्न करके, अपने दाँतों को दाँतों से भींचकर भोगों की प्रीति को त्यागो । भोगों और विषय-विकारों से असंग हो जाओ । उनके लिए मन में जो आकर्षण है कि 'यह खायेंगे तो मजा आयेगा... शादी करके सुखी होंगे तो मजा आयेगा... बेटा होगा तो मजा आयेगा...

ऐसा हो जायेगा तो मजा आयेगा...' इन सब बेवकूफियों को छोड़कर, इनकी उपेक्षा करो।

धन, सत्ता, सौन्दर्य, दुनियाई चीजों व भोगों की जो वासना भीतर भरी है, उसको निकालने के लिए इनकी तुच्छता की पोल खोलो। इससे इनका आकर्षण कम हो जायेगा और अंतरात्मसुख जागृत होगा, परमात्मशांति, आत्मशांति उभरेगी।

'हे रामजी ! इस त्रिलोकी में कोई भी पदार्थ श्रेष्ठ नहीं है। न पृथ्वी का राज्य श्रेष्ठ है, न देवताओं का रूप, न नागों का पाताल लोक श्रेष्ठ है, न शास्त्रों का पठन-मनन, न पुरातन कथा-कर्म का वर्णन श्रेष्ठ है, न बहुत जीना, न मूढ़ता से मर जाना श्रेष्ठ है, न नरक में पड़ना ही श्रेष्ठ है। जहाँ संत का मन स्थित होता है वही श्रेष्ठ है।'

संत का मन कहाँ स्थित होता है ? अपने आत्मस्वरूप में। जहाँ संत का मन शांत होता है वह परमात्म-सुख सबसे ऊँचा है, श्रेष्ठ है। उसको पाने का यत्न करना, यही सच्चा पुरुषार्थ है।

यह भगवान राम का युग नहीं, अपन राम नहीं, फिर भी इस कलहयुग में हमें वह सत्संग, वह सदुपदेश प्राप्त हो रहा है।

घर में सुख, स्वास्थ्य व शांति के लिए प्रयोग

(१) रोज प्रातः व सायं देशी गाय के गोबर से बने कण्डे का एक छोटा टुकड़ा जला लें। फिर उस पर देशी गौघृत मिश्रित चावल के कुछ दाने डाल दें ताकि वे जल जायें। इससे घर में वास्तु दोषों का निवारण होता है। घर में शांति व स्वास्थ्य बना रहता है।

(२) अमावस्या को देशी गौ के गोबर से निर्मित कण्डे को पूर्णतः जलाकर हवन कुण्ड या किसी पात्र में रख लें। फिर घर का प्रत्येक सदस्य निम्न ८ पदार्थों के मिश्रण की ५-५ आहूतियाँ देवे। इससे सुख, स्वास्थ्य एवं समृद्धि आती है। घर में ऋणायनों की वृद्धि होती है। धनात्मक परिणाम शीघ्र दिखाई देने लगते हैं।

आठ पदार्थ हैं : १. देशी गौघृत २. चावल ३. काला तिल ४. जौ ५. गुड़ ६. चंदन का चूरा ७. देशी कपूर ८. गूगल।

(३) आहूतियाँ देने से पूर्व के पूर्व एवं पश्चात् हाथ जोड़कर वास्तु देवता, स्थान देवता, अपने कुल देवी-देवता को प्रणाम कर कल्याण के लिए प्रार्थना करें।

संत तुलसीदासजी की प्रभुनिष्ठा

[गोस्वामी तुलसीदास जयंती : ४ अगस्त २००३]

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

परमात्मा सुखस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है। बड़े-बड़े वैज्ञानिकों की वैज्ञानिक खोजें, गणितज्ञों की गणित की तकनीकें और नमूने, बलवानों का बल, पहलवानों की पहलवानी, विद्वानों की विद्वत्ता, संतों का संतत्व, दाताओं की दानवीरता - जो भी कुछ योग्यता किसीमें भी दिखती है, वह आती है उस परमात्मा की सत्ता से। जो परमात्मा की पूर्ण शरण हो गया उसको तो जिस किसीकी गहराई में परमात्मा दिखेगा।

संत तुलसीदासजी अरण्य में विचरण करने जा रहे थे। एक सुंदर, सुहावना वृक्ष देखकर वे उसकी छाया में बैठ गये और सोचने लगे : 'प्रभु ! क्या आपकी लीला है ! आप कैसे फूलों में, फलों में निखरे हैं ! आपने वृक्ष के अंदर रस खींचने की कैसी लीला की है और कैसे रंग दे रखे हैं ! मेरे प्रभु ! आप कैसे सुहावने लग रहे हैं, मेरे रामजी !'

प्रभु की लीला देखते-देखते तुलसीदासजी आनंदित हो रहे थे। इतने में कोई लकड़हारा वहाँ से निकला और पेड़ पर चढ़कर धड़... धड़... करके वृक्ष काटने लगा। तुलसीदासजी घबड़ाये और लकड़हारे के पास जाकर बोले : ''भैया ! मैं तेरे पैर पकड़ता हूँ, तू मेरे प्रभु को मत मार।''

''महाराज ! मैं आपके प्रभु को तो कुछ नहीं कर रहा हूँ।''

''नहीं, चोट तो पहुँच रही है। मुझे पेड़ नहीं, पेड़ में मेरे प्रभु दिख रहे हैं। तू उनके इस रूप को न मार, चाहे मेरे इस शरीर को मार दे। मैं तेरे आगे हाथ जोड़ता हूँ।''

''महात्मन् ! यह क्या हो गया है आपको ?''

''देखो, वे प्रभु कैसा सुंदर रूप लेकर सजे-धजे हैं और तुम उनके हाथ-पैर काट रहे हो। ऐसा न करो, मेरे हाथ काट लो।'' लकड़हारे का मन बदल गया और वह आगे चला गया।

एक बार तुलसीदासजी यात्रा करते-करते किसी शांत वातावरण में बैठे थे। वहाँ से कभी हिरणों के झुंड गुजरते तो कभी अन्य प्राणियों के। वहाँ से गुजर रहे हिरणों के झुंड को देखकर वे सोचने लगे : 'प्रभु ! क्या आपकी लीला है ! कैसी प्यारी-प्यारी आँखें हैं, आपने कैसा निर्दोष चेहरा बनाया है, मेरे रामजी !'

तभी एक शिकारी तीर लेकर बारहसिंगे पर निशाना साध रहा था। तुलसीदासजी समझ गये। शिकारी के पास गये और बोले : 'यह क्या करता है ? मेरे ठाकुरजी, मेरे रामजी इतने सुंदर-सुंदर दिख रहे हैं। तू इनको न मार। भैया ! मारना है तो मुझे मार।'

...तो ये जो महात्मा लोग, आत्मज्ञानी संत हैं, वे तो तत्त्व में टिके हुए होते हैं लेकिन भाव से सब जगह - कीड़ी में, हाथी में, माई में, भाई में - सबकी गहराई में परमेश्वर को देखते हैं।

संतप्रवर तुलसीदासजी की वाणी है :

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

कोमल और कठोर

(१) हृदय को इतना कठोर बनाओ कि जगत का कुछ भी उसमें न घुसे।

जैसे पत्थर को पानी में डुबाओ तब भी उसमें पानी नहीं घुसता, ऐसे ही तुम्हारा जीवन जगत के कितने ही व्यवहार के बीच आ जाय किंतु तुम्हारे अंदर व्यवहार नहीं घुसना चाहिए। व्यवहारकाल की बातें चित्त की गहराई में बैठ न जायें इसका ध्यान रखें। जगत के व्यवहार में हृदय को एकदम तटस्थ रखें।

(२) हृदय को इतना कोमल बनाओ कि वह प्रभु के रंग में रँग जाय।

जब सत्संग में बैठें, भगवत्प्रेम की चर्चा सुनें तो अपने हृदय को इतना कोमल बना दें जैसे पिघला हुआ मोम। जैसे मोम जब पिघल जाता है तो उसमें जो रंग मिलाओ उसी रंग का बन जाता है, ऐसे ही अपने हृदय को इतना कोमल बनाओ कि वह भगवत्प्रेम से रँग जाय।

गुरुपूजन का पर्व

*** संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ***

गुरुपूर्णिमा अर्थात् गुरु के पूजन का पर्व। ...किंतु आज सब लोग अगर गुरु को नहलाने लग जायें, तिलक करने लग जायें, हार पहनाने लग जायें तो यह संभव नहीं है। लेकिन षोडशोपचार की पूजा से भी अधिक फल देनेवाली मानसपूजा करने से तो भाई ! स्वयं गुरु भी नहीं रोक सकते। मानसपूजा का अधिकार तो सबके पास है।

महिमावान श्री सद्गुरुदेव के पावन चरणकमलों का षोडशोपचार से पूजन करने से साधक-शिष्य का हृदय शीघ्र शुद्ध और उन्नत बन जाता है। मानसपूजा इस प्रकार कर सकते हैं :

मन-ही-मन भावना करो कि हम गुरुदेव के श्रीचरण धो रहे हैं... सप्ततीर्थों के जल से उनके पादारविन्द को स्नान करा रहे हैं। खूब आदर एवं कृतज्ञतापूर्वक उनके श्रीचरणों में दृष्टि रखकर... श्रीचरणों को प्यार करते हुए उनको नहला रहे हैं... उनके तेजोमय ललाट पर शुद्ध चंदन का तिलक कर रहे हैं... अक्षत चढ़ा रहे हैं... अपने हाथों से बनायी हुई गुलाब के सुंदर फूलों की सुहावनी माला अर्पित करके अपने हाथ पवित्र कर रहे हैं... हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर अपना अहंकार उनको समर्पित कर रहे हैं... पाँच कर्मेन्द्रियों, पाँच ज्ञानेन्द्रियों एवं ग्यारहवें मन की चेष्टाएँ गुरुदेव के श्रीचरणों में समर्पित कर रहे हैं...

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वा प्रकृतेः स्वभावात्।
करोमि यद् यद् सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयामि॥

'शरीर से, वाणी से, मन से, इन्द्रियों से, बुद्धि से अथवा प्रकृति के स्वभाव से जो-जो करते हैं वह सब समर्पित करते हैं। हमारे जो कुछ कर्म हैं, हे गुरुदेव ! सब आपके श्रीचरणों में समर्पित हैं। हमारा कर्तापन का भाव, हमारा भोक्तापन का भाव आपके श्रीचरणों में समर्पित है।'

इस प्रकार ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु की कृपा को, ज्ञान को, आत्मशांति को हृदय में भरते हुए, उनके अमृतवचनों पर अडिग बनते हुए अंतर्मुख होते जाओ... आनंदमय बनते जाओ... ॐ आनंद ! ॐ आनंद !! ॐ आनंद !!

इस प्रकार हर शिष्य मन-ही-मन अपने दिव्य भावों के अनुसार अपने सद्गुरुदेव का पूजन करके गुरुपूर्णिमा का पावन पर्व मना सकता है। करोड़ों जन्मों के माता-पिता, मित्र-सम्बन्धी जो न दे सके, सद्गुरुदेव वह हँसते-हँसते दे डालते हैं।

हे गुरुपूर्णिमा ! हे व्यासपूर्णिमा ! तू कृपा करना... गुरुदेव के साथ मेरी श्रद्धा की डोर कभी टूटने न पाये... मैं प्रार्थना करता हूँ, गुरुवर ! जब तक है जिंदगी, आपके श्रीचरणों में मेरी श्रद्धा बनी रहे।

वह भक्त ही क्या जो तुमसे मिलने की दुआ न करे ?
भूल प्रभु को जिंदा रहूँ कभी ये खुदा न करे ॥

हे गुरुवर !

लगाया जो रंग भक्ति का उसे छूटने न देना।
गुरु तेरी याद का दामन कभी छूटने न देना ॥
हर साँस में तुम और तुम्हारा नाम रहे।
प्रीति की यह डोरी कभी टूटने न देना ॥
श्रद्धा की यह डोरी कभी टूटने न देना ॥
बढ़ते रहें कदम सदा तेरे ही इशारे पर,
गुरुदेव ! तेरी कृपा का सहारा छूटने न देना।
सच्चे बनें और तरक्की करें हम,
नसीबा हमारा अब रूठने न देना ॥
देती है धोखा और भुलाती है दुनिया,
भक्ति को अब हमसे लूटने न देना।
प्रेम का यह रंग हमें रहे सदा याद,
दूर हों हम तुमसे यह कभी घटने न देना ॥
बड़ी मुश्किल से भरकर रखी है करुणा तुम्हारी...
बड़ी मुश्किल से थामकर रखी है श्रद्धा-भक्ति तुम्हारी...
कृपा का यह पात्र कभी फूटने न देना।
लगाया जो रंग भक्ति का उसे छूटने न देना,
प्रभुप्रीति की यह डोर कभी टूटने न देना ॥

आज गुरुपूर्णिमा के पावन पर्व पर हे गुरुदेव ! आपके श्रीचरणों में अनंत कोटि प्रणाम... आप जिस पद में विश्रांति पा रहे हैं, हम भी उसी पद में विश्रांति पाने के काबिल हो जायें... अब आत्मा-परमात्मा से जुदाई की घड़ियाँ ज्यादा न रहें... ईश्वर करे कि ईश्वर में हमारी प्रीति हो जाय... प्रभु करे कि प्रभु के नाते गुरु-शिष्य का सम्बन्ध बना रहे...

ज्योत से ज्योत जगाओ...

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

एक आरती में आता है :

ज्योत से ज्योत जगाओ, सद्गुरु !
ज्योत से ज्योत जगाओ।
मेरा अंतर तिमिर मिटाओ, सद्गुरु !
ज्योत से ज्योत जगाओ ॥
अंतर में युग-युग से सोई,
चितिशक्ति को जगाओ, सद्गुरु ! ज्योत से...

हमारे अंदर युगों से जो परमात्मिक चेतना सोयी हुई है, उसको सद्गुरु कृपा करके जाग्रत करते हैं। वह चेतना जब तक सोयी रहती है तब तक हमारी अवस्था ऐसी रहती है कि कमाओ, खाओ, बच्चे पैदा करो, धन इकट्ठा करो और छोड़कर मर जाओ... फिर दूसरे जन्म में इकट्ठा करो और मरो... ऐसा करते-करते सदियाँ बीत जाती हैं। जब तक पारमात्मिक चेतना नहीं जगती, तब तक हम नर में से नारायण-स्वरूप में नहीं जगते।

नर में से नारायण-स्वरूप में जगने के लिए ही हमें मनुष्य-जन्म मिला है और ऐसी बढ़िया बुद्धि मिली है। पेट भरना, बच्चों को पैदा करना, दुःख आ जाय तो परेशान हो जाना और सुख आ जाय तो हर्षित होना - इतना तो कीट-पतंग और पशु-पक्षी भी जानते हैं। केवल मनुष्य-जन्म की ही यह विशेषता है कि उसमें मनुष्य जिससे सारा जगत उत्पन्न हुआ है, जिसमें स्थित है और जिसमें विलय होता है, उस जगदीश्वर आत्मा को, परमात्मा को पहचानकर उसके साथ तालमेल कर सकता है।

एक सिपाही शत्रु-सेना से जूझ रहा है... उसके

कुछ साथी मर गये फिर भी जूझ रहा है, क्योंकि वह जानता है कि वह अकेला नहीं है, सेना से जुड़ा है, सरकार से जुड़ा है। ऐसे ही जीव अकेला होता है तो इस जन्म-मरण के चक्र से डरता है, फिसलता है, जन्मता है, मरता है, परंतु यदि उसका परमेश्वर के साथ तालमेल हो जाता है तो वह यहाँ भी सुखी और परलोक में भी सुखी हो जाता है।

इसलिए आप भी अकेले न रहिये।

''बाबाजी ! मैं पति के साथ हूँ।''

''फिर भी आप अकेली हैं।''

''बाबाजी ! मैं पत्नी के साथ हूँ।''

''फिर भी आप अकेले हैं।''

''हम दस आदमियों के साथ हैं।''

''फिर भी आप अकेले हैं।''

''हम हजार आदमियों के साथ हैं।''

''फिर भी आप अकेले हैं।''

आप भले पति या पत्नी के साथ हों अथवा दस या दस हजार आदमियों के साथ हों, फिर भी तब तक आप अकेले हैं जब तक आपने परमेश्वर के साथ तालमेल नहीं किया, तब तक हजारों के साथ रहते हुए भी आप अकेले हैं और अकेले रहते हुए भी यदि आपका तालमेल जगदीश्वर के साथ है तो पूरा विश्व आपके साथ चलने के लिए तैयार हो जायेगा।

आप जगत के स्वामी बनो अन्यथा जगत आप पर स्वामित्व जमा लेगा। आप ज्ञान के अनुसार जीवन बनाओ अन्यथा जीवन के अनुसार ज्ञान हो जायेगा।

जब एक व्यक्ति किसी पार्टी या सरकार से जुड़ता है तब उसका हौसला बढ़ जाता है। परंतु पार्टी से भी वह तब तक जुड़ा रहेगा जब तक पार्टी की सत्ता होगी। किंतु अगर वही व्यक्ति परमात्मा से जुड़ जाय तो कल्याण हो जाय...

ज्योत से ज्योत जगाओ, सद्गुरु !
ज्योत से ज्योत जगाओ ॥

मैं ऐसे हजारों-लाखों दीयों को जानता हूँ जो बिल्कुल खाली दीये हैं। उनमें घी और बाती, दोनों नहीं हैं। कई ऐसे दीयों को भी जानता हूँ जिनमें थोड़ा-सा घी तो है किंतु बाती नहीं है और कई ऐसे दीयों को भी जानता हूँ जिनमें घी नहीं है, केवल बाती है। कई ऐसे दीयों को भी जानता हूँ जिनमें घी भी है, बाती भी है परंतु वे जले हुए दीये के नजदीक नहीं पहुँच रहे हैं।

कई तो ऐसे खालीखट दीये हैं जिनमें श्रद्धा-भक्ति का घी ही नहीं है। कई श्रद्धा-भक्तिवाले दीये भी हैं, परंतु उनमें साधना की बाती नहीं है। कई साधना की बातीवाले दीये भी हैं परंतु जले हुए दीयों का संपर्क नहीं है। यदि जले हुए दीये का संपर्क बिना जले हुए दीये से हो जाय तो जले हुए दीये का कुछ भी नहीं बिगड़ता, परंतु बिना जला दीया भी उजाला करने लगता है। ऐसे ही सद्गुरु के संग से अप्रकट हृदय में परमात्मा का उजाला प्रकट होने लगता है।

ज्योत से ज्योत जलाने पर क्या जादू हो जाता है, किसी जले हुए दीये से पूछो। मंसूरी मस्ती को लोग बेचारे क्या जानें ? साधक की हस्ती को लोग बेचारे क्या जानें ?

मछली को सागर से क्या मिलता है ? मछली से पूछो। भगवद्भाव और गुरुओं के सत्संग से क्या मिलता है सगुरा ही जानता है, निगुरा क्या जाने ?

भगवान के स्वरूप की स्मृति आ जाय, भगवान के स्वरूप का ज्ञान हो जाय - ऐसी ज्योत से ज्योत जगानेवाले कोई ब्रह्मनिष्ठ संत मिल जाय तो बेड़ा पार हो जाय...

*

** 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका के सभी सेवादारों तथा सदस्यों को सूचित किया जाता है कि 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका की सदस्यता के नवीनीकरण के समय पुराना सदस्यक्रमांक/रसीदक्रमांक एवं सदस्यता 'पुरानी' है - ऐसा लिखना अनिवार्य है। जिसकी रसीद में ये नहीं लिखे होंगे, उस सदस्य को नया सदस्य माना जायेगा।*

** नये सदस्यों को सदस्यता के अंतर्गत वर्तमान अंक के अभाव में उसके बदले एक पूर्व प्रकाशित अंक भेजा जायेगा।*

गुरुपूर्णिमा-संदेश

[गुरुपूर्णिमा : १३ जुलाई पर विशेष]

※ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ※

गुरु कभी किसीको पास या दूर नहीं करते वरन् हम अपने ही कर्मों से उनके पास या दूर हो जाते हैं। **करमी आपो आपणी के नेड़े के दूरि...** ऐसे कर्म और चिन्तन न करें कि हम गुरु के ज्ञान से, गुरु के आत्मभाव से दूर हो जायें।

जो विचार दुःख पैदा करें, ऐसे विचारों को महत्त्व न दो। जो मुर्दों को आलिंगन करके खुश होना चाहते हैं, उन्हें होने दो। जो मुर्दे से चिपकते हैं या उसके पैर पकड़ते हैं, उन्हें पकड़ने दो किंतु तुम वैसा न करो। मुर्दा क्या है ? भूतकाल मुर्दा होता है। 'पहले मैं ऐसा था... वैसा था... उसने मेरे साथ ऐसा बर्ताव किया था...' ऐसा चिन्तन मत करो। सावधान हो जाओ।

जो बीत गया सो बीत गया। जो बीत गया वह अपने हाथ में नहीं है और जो आनेवाला है उसकी अभी से फिकर क्यों करें ? तुम केवल वर्तमान को ही निखारो, वर्तमान परिस्थितियों से लोहा लो। कभी भी अयोग्य विचारों से, अयोग्य कर्मों से समझौता न करो। दृढ़ बनो। जो दृढ़निश्चयी होते हैं, वे हजारों विरोधों और प्रलोभनों में भी डिगते नहीं हैं। कहा भी गया है :

हरिनो मारग छे शूरानो, नहीं कायरनुं काम जोने।

अर्थात् हरि का मार्ग शूरवीरों का है, कायरों का नहीं। कायरता को पोषो मत। जीवन में कायरता नहीं होनी चाहिए। इसका मतलब यह भी नहीं कि 'दुनिया का चाहे जो हो जाय, मैं यह करूँगा... वह करूँगा...' ऐसा करके विरोधी बना लो। युक्ति से अपने को ऊँचे लक्ष्य पर पहुँचाने का अभ्यास करो। अभ्यास बढ़ जायेगा तो बल, प्रेरणा अपने-आप मिलेगी और योग्यता में निखार आयेगा।

मंत्रदीक्षा के बाद नियमित थोड़ी साधना करोगे तो मनःशक्ति, प्राणशक्ति, शौर्यशक्ति, क्षमाशक्ति, औदार्यशक्ति आदि सारी शक्तियों के कुछ-कुछ अंश उभरने लगेंगे।

हम अपनी मान्यता के अनुसार ना रहें कि 'मेरा यह हो जाय... वह हो जाय...' लेकिन गुरु ने जो पाया है, जो जाना है और जहाँ वे हमें ले जाना चाहते हैं, उसमें तत्परता से लगें।

गुरु और भगवान से हम जितना निर्दोष प्रेम करेंगे, उतना निर्दोष तत्त्व हमें अपना लगेगा। वे लोग बहुत छोटे हैं, जो गुरु और भगवान से तुच्छ चीजें माँगते रहते हैं। जैसे हाथी के पैर में सब पैर समा जाते हैं, ऐसे ही जहाँ सुमति होती है वहाँ संपत्ति आ ही जाती है।

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ विपति निधाना॥

कभी-कभी संपत्ति की जगह विपत्ति मिले तो समझ लें कि आध्यात्मिक संपदा आनेवाली है। अभाव में और प्रतिकूलता में भी अगर खुश रह सकें तो यह एक संपदा है।

संपदा का मतलब यह नहीं कि रुपये-पैसे मिल जायें, पदोन्नति हो जाय, सत्ता मिल जाय... हताशा-निराशा को दूर करने के लिए यदि ये मिल जायें तो ठीक है, किंतु समता लाने के लिए प्रतिकूलता आ जाय तो उसे भी संपदा ही मानना चाहिए।

चतुर्मास का माहात्म्य

'स्कंद पुराण' के ब्राह्मखण्ड के अंतर्गत 'चातुर्मास्य माहात्म्य' में आता है :

सूर्य के कर्क राशि पर स्थित रहते हुए आषाढ़ शुक्ल एकादशी से लेकर कार्तिक शुक्ल एकादशी तक, वर्षाकालीन इन चार महीनों में भगवान विष्णु शेषशय्या पर शयन करते हैं। श्रीहरि की आराधना के लिए यह पवित्र समय है।

सब तीर्थ, देवस्थान, दान और पुण्य चतुर्मास आने पर भगवान विष्णु की शरण लेकर स्थित होते हैं। जो मनुष्य चतुर्मास में नदी में स्नान करता है वह सिद्धि को प्राप्त होता है। तीर्थ में स्नान करने पर पापों का नाश होता है।

जो मनुष्य जल में तिल और आँवले का मिश्रण अथवा बिल्वपत्र डालकर उस जल से स्नान करता है, उसमें दोष का लेशमात्र भी नहीं रह जाता।

चतुर्मास में बाल्टी में एक-दो बिल्वपत्र डालकर 'ॐ नमः शिवाय' का ४-५ बार जप करके स्नान करें तो विशेष लाभ होता है। इससे वायुप्रकोप दूर होता है और स्वास्थ्य की रक्षा होती है।

चतुर्मास में भगवान नारायण जल में शयन करते हैं, अतः जल में भगवान विष्णु के तेज का अंश व्याप्त रहता है। इसलिए उस तेज से युक्त जल का स्नान समस्त तीर्थों से भी अधिक फल देता है।

ग्रहण के सिवाय के दिनों में संध्याकाल में और रात को स्नान न करे। गर्म जल से भी स्नान नहीं करना चाहिए।

चतुर्मास सब गुणों से युक्त उत्कृष्ट समय है। उसमें श्रद्धापूर्वक धर्म का अनुष्ठान करना चाहिए।

यदि मनुष्य चतुर्मास में भक्तिपूर्वक योग के अभ्यास में तत्पर न हुआ तो निःसंदेह उसके हाथ से अमृत गिर गया।

बुद्धिमान मनुष्य को सदैव मन को संयम में रखने का प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि मन के भलीभाँति वश में होने से ही पूर्णतः ज्ञान की प्राप्ति होती है।

परद्रव्य का अपहरण और परस्त्रीगमन आदि कर्म सदा सब मनुष्यों के लिए वर्जित हैं। चतुर्मास में इनसे विशेष रूप से बचना चाहिए।

चतुर्मास में जीवों पर दया करना विशेष धर्म है तथा अन्न-जल व गौओं का दान, प्रतिदिन वेदपाठ और हवन - ये सब महान फल देनेवाले हैं। अन्नदान सबसे उत्तम है। उसका न रात में निषेध है न दिन में। शत्रुओं को भी अन्न देना मना नहीं है।

चतुर्मास में धर्म का पालन, सत्पुरुषों की सेवा, संतों के दर्शन, सत्संग-श्रवण, भगवान विष्णु का पूजन और दान में अनुराग दुर्लभ माना गया है।

जो चतुर्मास में भगवान की प्रीति के लिए अपने प्रिय भोग का प्रयत्नपूर्वक त्याग करता है, उसकी त्यागी हुई वस्तुएँ उसे अक्षय रूप में प्राप्त होती हैं। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक प्रिय वस्तु का त्याग करता है, वह अनंत फल का भागी होता है।

धातु के पात्रों का त्याग करके पलाश के पत्ते में भोजन करनेवाला मनुष्य ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है। चतुर्मास में ताँबे के पात्र में भोजन विशेष रूप से त्याज्य है।

चतुर्मास में काला और नीला वस्त्र पहनना हानिकारक है। इन दिनों में केशों को सँवारना (हजामत करवाना) त्याग दे तो वह मनुष्य तीनों तापों से रहित हो जाता है।

इन चार महीनों में भूमि पर शयन, ब्रह्मचर्य का पालन, पत्तल में भोजन, उपवास, मौन, जप, ध्यान, दान-पुण्य आदि विशेष लाभप्रद होते हैं।

चतुर्मास में परनिन्दा का विशेष रूप से त्याग करे। परनिन्दा को सुननेवाला भी पापी होता है।

चतुर्मास का माहात्म्य

'स्कंद पुराण' के ब्राह्मखण्ड के अंतर्गत 'चातुर्मास्य माहात्म्य' में आता है :

सूर्य के कर्क राशि पर स्थित रहते हुए आषाढ़ शुक्ल एकादशी से लेकर कार्तिक शुक्ल एकादशी तक, वर्षाकालीन इन चार महीनों में भगवान विष्णु शेषशय्या पर शयन करते हैं। श्रीहरि की आराधना के लिए यह पवित्र समय है।

सब तीर्थ, देवस्थान, दान और पुण्य चतुर्मास आने पर भगवान विष्णु की शरण लेकर स्थित होते हैं। जो मनुष्य चतुर्मास में नदी में स्नान करता है वह सिद्धि को प्राप्त होता है। तीर्थ में स्नान करने पर पापों का नाश होता है।

जो मनुष्य जल में तिल और आँवले का मिश्रण अथवा बिल्वपत्र डालकर उस जल से स्नान करता है, उसमें दोष का लेशमात्र भी नहीं रह जाता।

चतुर्मास में बाल्टी में एक-दो बिल्वपत्र डालकर 'ॐ नमः शिवाय' का ४-५ बार जप करके स्नान करें तो विशेष लाभ होता है। इससे वायुप्रकोप दूर होता है और स्वास्थ्य की रक्षा होती है।

• चतुर्मास में भगवान नारायण जल में शयन करते हैं, अतः जल में भगवान विष्णु के तेज का अंश व्याप्त रहता है। इसलिए उस तेज से युक्त जल का स्नान समस्त तीर्थों से भी अधिक फल देता है।

ग्रहण के सिवाय के दिनों में संध्याकाल में और रात को स्नान न करे। गर्म जल से भी स्नान नहीं करना चाहिए।

चतुर्मास सब गुणों से युक्त उत्कृष्ट समय है। उसमें श्रद्धापूर्वक धर्म का अनुष्ठान करना चाहिए।

यदि मनुष्य चतुर्मास में भक्तिपूर्वक योग के अभ्यास में तत्पर न हुआ तो निःसंदेह उसके हाथ से अमृत गिर गया।

बुद्धिमान मनुष्य को सदैव मन को संयम में रखने का प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि मन के भलीभाँति वश में होने से ही पूर्णतः ज्ञान की प्राप्ति होती है।

परद्रव्य का अपहरण और परस्त्रीगमन आदि कर्म सदा सब मनुष्यों के लिए वर्जित हैं। चतुर्मास में इनसे विशेष रूप से बचना चाहिए।

चतुर्मास में जीवों पर दया करना विशेष धर्म है तथा अन्न-जल व गौओं का दान, प्रतिदिन वेदपाठ और हवन - ये सब महान फल देनेवाले हैं। अन्नदान सबसे उत्तम है। उसका न रात में निषेध है न दिन में। शत्रुओं को भी अन्न देना मना नहीं है।

चतुर्मास में धर्म का पालन, सत्पुरुषों की सेवा, संतों के दर्शन, सत्संग-श्रवण, भगवान विष्णु का पूजन और दान में अनुराग दुर्लभ माना गया है।

जो चतुर्मास में भगवान की प्रीति के लिए अपने प्रिय भोग का प्रयत्नपूर्वक त्याग करता है, उसकी त्यागी हुई वस्तुएँ उसे अक्षय रूप में प्राप्त होती हैं। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक प्रिय वस्तु का त्याग करता है, वह अनंत फल का भागी होता है।

धातु के पात्रों का त्याग करके पलाश के पत्ते में भोजन करनेवाला मनुष्य ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है। चतुर्मास में ताँबे के पात्र में भोजन विशेष रूप से त्याज्य है।

चतुर्मास में काला और नीला वस्त्र पहनना हानिकारक है। इन दिनों में केशों को सँवारना (हजामत करवाना) त्याग दे तो वह मनुष्य तीनों तापों से रहित हो जाता है।

इन चार महीनों में भूमि पर शयन, ब्रह्मचर्य का पालन, पत्तल में भोजन, उपवास, मौन, जप, ध्यान, दान-पुण्य आदि विशेष लाभप्रद होते हैं।

चतुर्मास में परनिन्दा का विशेष रूप से त्याग करे। परनिन्दा को सुननेवाला भी पापी होता है।

परनिन्दा महापापं परनिन्दा महाभयम् ।
परनिन्दा महद्दुःखं न तस्याः पातकं परम् ॥

'परनिन्दा महान पाप है, परनिन्दा महान भय है, परनिंदा महान दुःख है और परनिन्दा से बढ़कर दूसरा कोई पातक नहीं है ।' (स्कं. पु. ब्रा. चा. मा. : ४.२५)

व्रतों में सबसे उत्तम व्रत है - ब्रह्मचर्य का पालन । ब्रह्मचर्य तपस्या का सार है और महान फल देनेवाला है । इसलिए समस्त कर्मों में ब्रह्मचर्य बढ़ायें । ब्रह्मचर्य के प्रभाव से उग्र तपस्या होती है । ब्रह्मचर्य से बढ़कर धर्म का उत्तम साधन दूसरा नहीं है । विशेषतः चतुर्मास में यह व्रत संसार में अधिक गुणकारक है, ऐसा जानो ।

यदि धीर पुरुष चतुर्मास में नित्य परिमित अन्न का भोजन करता है तो वह सब पातकों का नाश करके वैकुंठ धाम को पाता है । चतुर्मास में केवल एक ही अन्न का भोजन करनेवाला मनुष्य रोगी नहीं होता । जो मनुष्य चतुर्मास में प्रतिदिन एक समय भोजन करता है उसे 'द्वादशाह यज्ञ' का फल मिलता है ।

जो मनुष्य चतुर्मास में केवल दूध पीकर अथवा फल खाकर रहता है, उसके सहस्रों पाप तत्काल विलीन हो जाते हैं । जो चतुर्मास में प्रतिदिन केवल जल पीकर रहता है, उसे रोज-रोज अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है ।

पंद्रह दिन में एक दिन संपूर्ण उपवास करे तो वह शरीर के दोषों को जला देता है और चौदह दिनों में भोजन का जो रस बना है उसे ओज में बदल देता है । इसलिए एकादशी के उपवास की महिमा है । वैसे तो गृहस्थ को महीने में केवल शुक्लपक्ष की एकादशी रखनी चाहिए, किंतु **चतुर्मास की तो दोनों पक्षों की एकादशियाँ रखनी चाहिए ।**

चतुर्मास में भगवान नारायण योगनिद्रा में शयन करते हैं इसलिए चार मास शादी-विवाह और सकाम यज्ञ नहीं होते । ये चार मास तपस्या करने के हैं ।

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक-पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा । जो सदस्य १२९वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया जुलाई २००३ के अंत तक अपना नया पता भेज दें ।

सद्गुरु : मनुष्यरूप में साक्षात् नारायण

** स्वामी विवेकानंद का अनुभव **

सुविख्यात स्वामी विवेकानंद, समर्थ सद्गुरु श्री रामकृष्ण परमहंस के शरणागत होकर ही कृतार्थ हुए । वे भक्ति के विषय में कहते हैं :

'गुरु की कृपा से मनुष्य में छिपी हुई अलौकिक शक्तियाँ विकसित होती हैं, उसे चैतन्य प्राप्त होता है तथा उसकी आध्यात्मिक उन्नति होती है और अंत में वह नर से नारायण हो जाता है । ...सत्य-ज्ञान-आनंदस्वरूप सद्गुरु को संसार ईश्वर-तुल्य मानता है । शिष्य शुद्धचित्त, जिज्ञासु और परिश्रमी होना चाहिए । जब शिष्य अपने को ऐसा बना लेता है, तब श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ, निष्पाप, दयालु और प्रबोधचतुर समर्थ सद्गुरु उसे मिलते हैं । ...सद्गुरु शिष्य के नेत्रों में ज्ञानांजन लगाकर उसे दृष्टि देते हैं । ऐसे सद्गुरु बड़े भाग्य से जब मिलें, तब अत्यंत नम्रता, विमल सद्भाव और दृढ़ विश्वास के साथ उनकी शरण लो, अपना सम्पूर्ण हृदय उन्हें अर्पण करो, उनके प्रति अपने चित्त में परम प्रेम धारण करो, उन्हें प्रत्यक्ष परमेश्वर समझो । इससे आप भक्ति एवं ज्ञान का समुद्र प्राप्त कर कृतकृत्य हो जाओगे ।

...महात्मा, सिद्ध पुरुष ईश्वर के अवतार होते हैं । वे केवल स्पर्श से, एक कृपा-कटाक्ष से, केवल संकल्पमात्र से भी शिष्य को कृतार्थ कर देते हैं, पर्वत जैसे पापों का बोझ ढोनेवाले भ्रष्ट जीवन को भी अपनी दया से क्षणार्ध में पुण्यात्मा बनाते हैं । वे गुरुओं के गुरु हैं । मनुष्यरूप में प्रकट होनेवाले साक्षात् नारायण हैं । मनुष्य उन्हींके रूप में परमात्मा को देख सकता है ।

अलख पुरुष की आरसी, सद्गुरु का ही देह।
लखा जो चाहे अलख को, इन्हींमें तू लख लेह ।।

भगवान निर्गुण-निराकार हैं, पर हम लोग जब तक मनुष्य हैं (देहभाव में हैं), तब तक हमें उन्हें मनुष्यरूप में ही पूजना चाहिए। तुम चाहे जो कहो, चाहे जितना प्रयत्न करो, पर तुम्हें मनुष्यरूपी (सगुण) परमेश्वर का ही भजन करना होगा। निर्गुण-निराकार का चाहे कोई कितना ही पाण्डित्य बघारे, सगुण का तिरस्कार करे, अवतारों की निन्दा करे, सूर्य-चन्द्र, तारागणों को दिखाकर बुद्धिवाद से उन्हींमें देवत्व देखने को कहे - पर उसमें यथार्थ आत्मज्ञान कितना है, यह यदि तुम देखो तो वह केवल शून्य है। हम लोग मनुष्य हैं, परमात्मा हमसे सगुणरूप में सद्गुरु-रूप में ही मिलते हैं, इसमें कुछ भी संदेह नहीं।'

स्वामी विवेकानंदजी आगे कहते हैं : 'भगवान से मिलने की इच्छा करनेवाले मुमुक्षु के नेत्र श्रीगुरु ही खोलते हैं । गुरु और शिष्य का सम्बन्ध पूर्वज और वंशज के सम्बन्ध जैसा ही है। श्रद्धा, सच्चाई, नम्रता, शरणागति और आदरभाव से शिष्य गुरु का मन मोह ले तो ही उसकी आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है। विशेष रूप से ध्यान में रखने की बात यह है कि जहाँ गुरु-शिष्य का नाता अत्यंत प्रेम से युक्त होता है, वहीं प्रचंड आध्यात्मिक शक्ति के महात्मा उत्पन्न होते हैं।

स्वानुभूति ज्ञान की परम सीमा है, वह स्वानुभूति ग्रंथों से नहीं प्राप्त हो सकती। पृथ्वी का पर्यटन कर चाहे आप सारी भूमि पदाक्रांत कर डालें, हिमालय, काकेशस, आल्प्स पर्वत लाँघ जायें, समुद्र में गोता लगाकर उसकी गहराई में बैठ जायें, तिब्बत देश देख लें या गोबी (अफ्रीका) का मरुस्थल छान डालें, स्वानुभव का यथार्थ धर्म-रहस्य इन बातों से, श्रीगुरु के कृपा-प्रसाद के बिना त्रिकाल में भी ज्ञात नहीं होगा। इसलिए भगवान की कृपा से जब ऐसा भाग्योदय हो कि श्रीगुरु दर्शन दें, तब सर्वान्तःकरण से श्रीगुरु की शरण लो, उन्हें ऐसा समझो जैसे यही परब्रह्म हों, उनके बालक बनकर अनन्यभाव से उनकी सेवा करो, इससे आप धन्य होंगे। ऐसे परम प्रेम और आदर के साथ जो श्रीगुरु के शरणागत हुए, उन्हींको और केवल उन्हींको सच्चिदानंद प्रभु ने प्रसन्न होकर अपनी परम भक्ति दी है और अध्यात्म के अलौकिक चमत्कार दिखाये हैं।'

भाई लहणा की गुरुभक्ति

खडूरगाँव (जि. अमृतसर, पंजाब) के लहणा चौधरी गुरु नानकदेव के शरणागत हुए। गुरु नानक उन्हें भाई लहणा कहते थे।

करतारपुर में गुरु नानकदेव ने पशुओं की देखभाल की सेवा भाई लहणा को सौंप दी। वहाँ और भी कई शिष्य थे जो खेती-बाड़ी व पशुओं की देखरेख रखते थे। एक बार लगातार कई दिनों तक वर्षा होती रही। जब वर्षा बंद हुई तो चारों ओर कीचड़ हो गया। पशुओं का चारा समाप्त हो गया था लेकिन कोई भी शिष्य चारा लाने के लिए जाने को तैयार नहीं था क्योंकि उस कीचड़ में, कीचड़ से भरी घास लाना कोई आसान कार्य न था। भाई लहणा चारा लेने चले गये। जब वे चारा लेकर लौटे तो उनके कपड़े ही नहीं, सारा शरीर भी कीचड़ से लथपथ था परंतु उन्हें इस बात का कोई दुःख नहीं था क्योंकि गुरुसेवा को ही उन्होंने अपना सर्वस्व बना लिया था।

एक बार गुरु नानक ने जानबूझकर अपना काँसे का कटोरा कीचड़ से भरे एक गड्ढे में फेंक दिया और अपने पुत्रों तथा शिष्यों को आदेश दिया कि वे कटोरा निकाल लायें। गड्ढे में घुटने से भी ऊपर तक कीचड़ भरा हुआ था। सब लोग कोई-न-कोई बहाना बनाकर खिसक गये। भाई लहणा तत्काल गड्ढे में उतर गये और कटोरा निकाल लाये। उन्हें इस बात की रत्तीभर भी चिन्ता नहीं हुई कि कीचड़ उनके शरीर से लिपट जायेगा और उनके कपड़े कीचड़ से भर जायेंगे। उनके लिए तो गुरुदेव का आदेश ही सर्वोपरि था।

एक दिन कुछ भक्त लंगर खत्म हो जाने के बाद डेरे पर पहुँचे। वे बहुत दूर से चलकर आये थे। उन्हें भूख लगी थी। गुरु नानकदेव ने अपने दोनों पुत्रों को सामने खड़े कीकर के एक पेड़ की ओर इशारा करते हुए कहा : 'तुम दोनों उस पेड़ पर चढ़ जाओ और डालियों को जोर-से हिलाओ। इससे तरह-तरह की मिठाइयाँ टपकेंगी। उन्हें इन लोगों को खिला देना।'

गुरु नानक की बात सुनकर उनके दोनों पुत्र आश्चर्य से उनका मुँह देखने लगे। 'पेड़ से ...और कीकर के पेड़ से... मिठाइयाँ, भला कैसे टपक सकती हैं ! पिताजी अकारण ही हमारा मजाक उड़वाना चाहते हैं।' - यह सोचकर वे दोनों चुपके-से वहाँ से खिसक गये। गुरु नानक ने अपने अन्य शिष्यों से भी यही कहा परंतु कोई तैयार नहीं हुआ। सब शिष्य यही सोच रहे थे कि गुरुदेव उन्हें बेवकूफ बनाना चाहते हैं।

भाई लहणा को गुरु नानकदेव में अगाध श्रद्धा थी, अडिग विश्वास था। वे उठे, कीकर के पेड़ पर जा चढ़े और उन्होंने पेड़ की डालियाँ जोर-से हिलानी शुरू कर दीं। दूसरे ही पल काँटों से भरे कीकर के पेड़ से तरह-तरह की स्वादिष्ट मिठाइयाँ टपकने लगीं। वहाँ उपस्थित लोगों की आँखें आश्चर्य से फटी रह गयीं। भाई लहणा ने पेड़ से उतरकर मिठाइयाँ इकट्ठी कीं और आये हुए भक्तों को खिला दीं।

पुत्रों ने नानकजी की अवज्ञा की लेकिन भाई लहणा के मन में ईश्वररूप गुरु नानक के किसी भी शब्द के प्रति अविश्वास का नामो-निशान तक नहीं था। श्रीकृष्ण के पुत्रों ने भी श्रीकृष्ण की अवज्ञा की और फायदा नहीं उठाया, चमचों के चक्कर में रहे। आज भी श्रीकृष्ण से लाखों लोग फायदा उठा रहे हैं, जबकि उनके बेटों ने नहीं उठाया। **अतिसान्निध्यात् भवेत् अवज्ञा।** जिन्हें अति सान्निध्य मिलता है वे लाभ नहीं उठाते। कैसा आश्चर्य है ! उनकी मति उलटी हो जाती है।

गुरु नानक समाधि लगाये अपनी गद्दी पर बैठे थे। उनके सामने अनेक शिष्य उनके उपदेश की प्रतीक्षा कर रहे थे। अचानक उन्होंने आँखें खोलीं, एक नजर सामने बैठे शिष्यों पर डाली और फिर पास ही पड़ा डंडा उठाकर शिष्यों पर टूट पड़े। जो भी सामने आया, उस पर डंडे बरसाने लगे। उनकी रौद्र मूर्ति और पागलों जैसी अवस्था देखकर उनके दोनों पुत्र तथा अन्य शिष्य शीघ्रता से भागे परंतु भाई लहणा वहीं खड़े रहे एवं गुरु नानक के डंडों की मार बड़े शांत भाव से सहन करते रहे।

गुरु नानकदेव ने भाई लहणा की अनेक परीक्षाएँ लीं परंतु वे सभी परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुए। तब उन्होंने सबसे अधिक भीषण परीक्षा लेने का निश्चय कर लिया। वे कुछ देर तक इसी तरह पागलों जैसी हरकत करते रहे और फिर जंगल की ओर चल दिये। उनकी पागलों जैसी हालत देखकर बहुत-से कुत्ते उनके पीछे लग गये, परंतु गुरु नानक अपने डंडे से उन्हें धमकाते हुए जंगल की ओर बढ़ते रहे। यह देखकर उनके कुछ शिष्य और दोनों पुत्र भी उनके पीछे-पीछे चल दिये। उन शिष्यों में भाई लहणा भी शामिल थे। चलते-चलते गुरु नानक श्मशान में पहुँचे और कफन से ढके एक मुर्दे के पास जाकर रुक गये। वे बड़े ध्यान से उस मुर्दे को देख ही रहे थे कि उनके दोनों पुत्र और शिष्य भी वहाँ पहुँच गये।

''तुम लोग बहुत दूर से मेरे पीछे-पीछे आ रहे हो। दोपहर का वक्त है, भोजन का समय हो चुका है। तुम लोगों को भूख भी लगी होगी। तुम्हें आज बहुत ही स्वादिष्ट चीज खिलाता हूँ।'' यह कहकर गुरु नानकदेव ने मुर्दे की ओर इशारा किया और अपने पुत्रों तथा शिष्यों की ओर देखते हुए बोले : ''इसे खाओ।''

गुरु नानक की बात सुनकर सब लोग सन्नाटे में आ गये। कितना विचित्र और भयानक था गुरु का आदेश ! उनके दोनों पुत्रों और शिष्यों ने घृणा से अपने मुँह फेर लिये और वहाँ से खिसकने लगे, परंतु भाई लहणा आगे बढ़े और पूछा : ''गुरुदेव ! इस मुर्दे को किस ओर से खाना शुरू करूँ। सिर की ओर से या पैरों की ओर से ?'' गुरु नानक ने कहा : ''पैरों की ओर से खाना शुरू करो।'' ''जो

आज्ञा !'' कहकर भाई लहणा मुर्दे के पैरों के पास जा बैठे। उनके मन में न घृणा थी, न कोई परेशानी ही। उन्होंने हाथ बढ़ाकर मुर्दे के ऊपर पड़ा कफन हटा दिया। कफन के नीचे कोई मुर्दा नहीं था। वह सफेद चादर धरती पर इस तरह पड़ी थी, जैसे उससे किसी लाश को ढक दिया गया हो।

गुरु नानकदेव के चेहरे पर करुणाभरी मुस्कराहट खिल उठी। उनकी आँखें स्नेह से चमक उठीं। उन पर छाया हुआ पागलपन जाता रहा और वे सामान्य स्थिति में आ गये। उन्होंने आगे बढ़कर भाई लहणा को अपनी बाँहों में भर हृदय से लगा लिया। उनका हृदय छलक पड़ा और वे कृपापूर्ण स्वर में बोले : ''आज से तुम्हारा नाम भाई लहणा नहीं, अंगददेव है। मैंने तुम्हें अपने अंग से लगा लिया है। अब तुम मेरे ही प्रतिरूप हो।''

कैसे थे वे शिष्य ! जिन्होंने गुरुओं का माहात्म्य जानकर समझा कि गुरुओं की कृपा कैसे पचायी जाती है और आज के...

*

गुरुभक्त श्री दुर्गाचरण नाग महाशय

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के अनन्य शिष्य श्री दुर्गाचरण नाग महाशय संसारी बातों में रुचि नहीं लेते थे। यदि कोई ऐसी बात शुरू करता तो वे युक्ति से उस विषय को आध्यात्मिक चर्चा में बदल देते थे। यदि उनको किसी पर क्रोध आता तो उस वक्त उन्हें जो भी वस्तु मिल जाती उससे अपने-आपको पीटने लगते और स्वयं को सजा देते। वे न तो किसीका विरोध करते और न निन्दा ही।
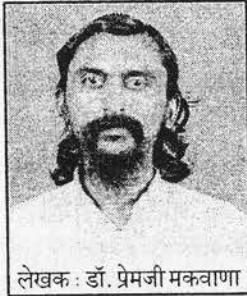
लेखक : डॉ. प्रेमजी मकवाणा

एक बार अनजाने में उनके द्वारा किसी व्यक्ति के लिए निन्दात्मक शब्द निकल गये। जैसे ही वे सावधान हुए, वैसे ही एक पत्थर उठाकर अपने ही सिर पर जोर-से तब तक मारते रहे जब तक कि खून न बहने लगा। इस घाव को मिटने में ही एक महीना लग गया। इस विचित्र कार्य को योग्य ठहराते हुए उन्होंने कहा : 'दुष्ट को सही सजा मिलनी ही चाहिए।'

स्वामी रामकृष्ण को जब गले का कैंसर हो गया था, तब नाग महाशय रामकृष्णदेव की पीड़ा को देख नहीं सकते थे। एक दिन जब नाग महाशय उनको प्रणाम करने गये, तब रामकृष्णदेव ने कहा :

''ओह ! तुम आ गये। देखो, डॉक्टर विफल हो गये। क्या तुम मेरा इलाज कर सकते हो ?''

दुर्गाचरण एक क्षण के लिए सोचने लगे। फिर रामकृष्णदेव के रोग को अपने शरीर पर लाने के लिए मन-ही-मन संकल्प किया और बोले :

''जी गुरुदेव ! आपका इलाज मैं जानता हूँ। आपकी कृपा से मैं अभी वह इलाज करता हूँ।''

लेकिन जैसे ही वे परमहंसजी के निकट पहुँचे, रामकृष्ण परमहंस उनका इरादा जान गये। उन्होंने नाग महाशय को हाथ से धक्का देकर दूर कर दिया और कहा : ''हाँ, मैं जानता हूँ कि तुममें यह रोग मिटाने की शक्ति है।''

एक बार नाग महाशय का एक भक्त उनके दर्शन के लिए ढाका से आया था। बारिश के दिन थे। नाव भी नहीं थी। अतः वह तैरकर लम्बा अंतर तय करके रात को आठ बजे पहुँचा तो इस पार नाग महाशय उसके इंतजार में खड़े थे। नाग महाशय ने उससे कहा : 'इस समय आस-पास जहरीले साँप होते हैं, ऐसे भयानक वातावरण में आपने ऐसा साहस क्यों किया ?'

वे उसे घर में ले गये और उसको सूखे कपड़े देकर जब भोजन बनाने गये तो उन्होंने देखा कि सूखी लकड़ी नहीं है। नाग महाशय ने घर का एक खंभा तोड़ना शुरू किया, जिसे जलाकर वे भोजन बना सकें। सबके रोकने पर भी उन्होंने किसीकी बात न सुनी, बल्कि कहने लगे : ''डूबने की और जहरीले साँपों की जोखिम उठाकर यह आदमी मुझे मिलने आया है। उसकी सेवा के लिए क्या मैं इस झोंपड़े की आसक्ति नहीं छोड़ सकता ? ऐसे लोगों की सेवा के लिए मुझे प्राण भी देने पड़ें तो मैं धन्य हो जाऊँगा।''

धन्य है सनातन धर्म और धन्य है नाग महाशय की सनातनी निष्ठा !

हिन्दू लोगों की यह मान्यता है कि अर्धोदय योग (जो ५० वर्ष में एक बार आता है) के दिन जो गंगा-स्नान करते हैं, उनका अज्ञान और पाप नष्ट हो जाते हैं और वे स्वर्ग में जाते हैं। उस पवित्र दिन को तीन-चार दिन की ही देरी थी, तब नाग महाशय गंगा किनारे ही बसे हुए कलकत्ता को छोड़कर अपने गाँव चले गये। उनके पिता आग बबूला हो गये और कहने लगे : ''लोग तो इस पवित्र दिन गंगा-स्नान करने के लिए घर का सामान बेचकर भी गंगातट पर जाते हैं और तुम गंगा को छोड़कर घर आ गये। सचमुच, मैं तुम्हारे जीवन की धार्मिकता को समझ नहीं पाता। अब भी कुछ दिन बाकी हैं, मुझे कलकत्ता ले चलो।''

लेकिन नाग महाशय ने नम्रतापूर्वक कहा : ''यदि मनुष्य की भक्ति सच्ची हो तो गंगा माता स्वयं घर में प्रकट हो जाती हैं, उस भक्त को कहीं जाने की जरूरत नहीं है।''

अर्धोदय योग के दिन नाग महाशय के कुछ भक्त उनके दर्शन करने आये थे। एकाएक एक महिला ने देखा कि बरामदे के अग्निकोण (दक्षिण-पूर्व) में जलधारा प्रकट हो गयी है और पानी का फव्वारा छूटा है। आश्चर्यचकित भक्त इकट्ठे हो गये। वह फव्वारा एक धारा के रूप में बहने लगा। भक्तों का कोलाहल सुनकर नाग महाशय अपने कमरे से बाहर आ गये। झरने को देखकर उन्होंने भक्तिभावपूर्वक प्रणाम किया। कुछ जल अपने सिर पर छिड़का और प्रार्थना की : 'गंगे मात की जय ! माँ ! हमें पावन कीजिये।'

यह रहस्यमय जल की बात गाँव में फैल गयी। गाँव के निवासियों ने और भक्तों ने इस अद्भुत झरने में स्नान करके धन्यता का अनुभव किया। कुछ अरसे के बाद जब यह बात स्वामी विवेकानंद ने सुनी तब उन्होंने कहा : 'नाग महाशय जैसे महात्मा के संकल्प से असंभव भी संभव हो जाता है। उनके अभीष्ट संकल्पबल से लोग मुक्तिलाभ भी कर सकते हैं।'

*

अनमोल है सत्संग !

'मानव सेवा संघ' के संस्थापक स्वामी शरणानंदजी से किसीने पूछा : ''आप सत्संग-समारोह तो करते हैं परंतु उस पर इतना खर्चा ! आपको सत्संग-समारोह बहुत ही सादगी के साथ करना चाहिए।''

शरणानंदजी ने कहा : ''मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इतने खर्चे के बाद अगर एक भी भाई के जीवन में, एक भी बहन के जीवन में जीवन की वास्तविक माँग जागृत हो जाय तो उस पर सारे विश्व की संपत्ति न्योछावर कर देना भी कम है। आपने सत्संग का महत्त्व नहीं समझा है। सत्संग के लिए हँसते-हँसते प्राण भी दिये जा सकते हैं। सत्संग के लिए क्या नहीं दिया जा सकता ? आप यह सोचें कि सत्संग जीवन की कितनी आवश्यक वस्तु है। अगर आपके जीवन में सफलता होगी तो वह सत्संग से ही होगी। अगर जीवन में असफलता है तो वह असत् के संग से है।''

उक्त प्रश्न वे ही कर सकते हैं जिनको सत्संग के मूल्य का पता नहीं है, जिनकी मति-गति भोगों में भटकी हुई है।

अगर दुनिया की सब संपत्ति खर्च करके भी सत्संग मिलता है तो भी सस्ता है।

सत्संग से जो सुधार होता है वह कुसंग से थोड़े ही होगा। सत्संग से जो सन्मति मिलती है वह भोग-संग्रह से थोड़े ही मिलेगी।

लाखों रुपये खर्च किये, व्यक्ति को पढ़ा दिया, डॉक्टर, बैरिस्टर बना दिया लेकिन सत्संग नहीं मिला तो बचा सकेगा अपने को कुसंग से ? ...नहीं।

सत्संग व्यक्ति को भोग-संग्रह से बचाकर आंतरिक सुख का एहसास कराता है।

संकल्प का प्रभाव

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

मन का आहार रस है। अगर मन संसार में रस लेता है तो तुच्छ हो जाता है और अगर सत्संग, साधन-नियम के माध्यम से ईश्वर का रस लेता है तो संकल्प-विकल्प कम होने से बुद्धि की प्रखरता आती है, वह परब्रह्म परमात्मा के रस में टिकती है और मन महान संकल्प-सामर्थ्य से संपन्न हो जाता है।

एक विलासी राजा थे। वे ऐश-आराम, मौज-मस्ती में ही जीवन पूरा कर रहे थे। साधारण राजाओं में यश, वाहवाही की इच्छा और अहंकार आदि जो दोष होते हैं, वे उनमें भी थे। जब उनको लगा कि वशिष्ठजी महाराज का जीवन ऊँचा है, महापुरुषों के जीवन का सुख हम लोगों के सुखों से ऊँचा है - **'धिग्बलं शस्त्रबलं ब्रह्मबलं हि बलम्।'** तो वे ही विलासी राजा सत्संग-साधना करके ब्रह्मर्षि विश्वामित्र हो गये!

उन्होंने अंतर्मुख होकर जप, ध्यान करते हुए अपने संकल्प-सामर्थ्य को विकसित किया। उनके संकल्प-सामर्थ्य का इतना विकास हो गया कि त्रिशंकु जब स्वर्ग से गिराये जा रहे थे तो उन्होंने त्रिशंकु को दयावश आसमान में ही रोक दिया और कहा कि 'अगर तू चाहे तो तेरे लिए वहीं आकाश में स्थान बना दूँ।' कितनी शक्ति है संकल्प में!

ब्रह्माजी के संकल्प से गेहूँ, चावल, जौ बने तो विश्वामित्रजी के संकल्प से ज्वार, मक्का और बाजरा बना। ब्रह्माजी की सृष्टि में स्पर्श या संकल्प से गर्भधारण की व्यवस्था हुई तो विश्वामित्र गर्भधारण किये बिना ही बालक पैदा करने की सृष्टि रच रहे थे। संकल्प करते-करते मानवी खोपड़ी के सदृश आकार - नारियल बन गया। फिर उनकी संकल्पशक्ति वहीं रुक गयी।

वही नारियल आज मठ-मंदिरों में भगवान व गुरुओं को चढ़ाया जाता है। अपना सिर अर्पण करने का प्रतीक है नारियल। नारियल अर्पण करना अर्थात् अपना अहं, अपनी मनमुखता अर्पण करना।

कहाँ एक साधारण भोगी राजा और कहाँ रस पाने का साधन बदला, दिशा बदली तो विश्वामित्र ऋषि बन गये! भगवान राम और लक्ष्मण ने चरणसेवा की है विश्वामित्र ऋषि की!

संकल्प के गौरव को कोई-कोई गुरुमुख जानते हैं। सहजोबाई ने संकल्प के गौरव को जाना... चरणदासजी ने जाना... ध्रुव, प्रह्लाद ने जाना... मीराबाई ने जाना... और वे असीम सामर्थ्य के धनी हुए। यहाँ तक कि भगवान को भी अपना पुत्र बनाने में ऐसे महामानव सफल हुए।

आप भगवान को अपना पुत्र बनायें ऐसा हमारा आग्रह या संकेत नहीं है लेकिन कम-से-कम अपने मन को अपना मित्र बना लें तो आपका तो मंगल होगा ही, आपके संपर्क में आनेवालों का भी कल्याण होगा।

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः॥
शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्॥

'संकल्प से उत्पन्न होनेवाली सम्पूर्ण कामनाओं को निःशेषरूप से त्यागकर और मन के द्वारा इन्द्रियों के समुदाय को सभी ओर से भलीभाँति रोककर क्रम-क्रम से अभ्यास करता हुआ उपरति को प्राप्त हो तथा धैर्ययुक्त बुद्धि के द्वारा मन को परमात्मा में स्थित करके परमात्मा के सिवा और कुछ भी चिन्तन न करे।'

(गीता : ६.२४,२५)

इससे आपका संकल्प-सामर्थ्य, बुद्धि-सामर्थ्य अथाह हो जायेगा। संकल्प का प्रभाव प्रकट होने लगेगा। ज्ञानेश्वर महाराज ने संकल्प के बल से भैंसे से वेदमंत्रों का उच्चारण करवा दिया था! पीठ पर रोटियाँ सिंकवा ली थीं! चबूतरे को चला दिया था!

मेरे गुरुदेव के जीवन में भी कई बार उनका संकल्प-सामर्थ्य देखने का अवसर आया।

संकल्प-बल की परीक्षा जल्दी नहीं करनी चाहिए लेकिन हमने बेवकूफी की। ट्रेन को रोक देना, बरसात कर देना, बरसात बंद कर देना... पहले हम यह सब करते थे किंतु आध्यात्मिक खजाने के आगे सब मदारी के खेल जैसा लगता है।

यदि वह संकल्प चलाये, मुर्दा भी जीवित हो जाये।

सृष्टि के नियम के अनुकूल ही महापुरुषों का संकल्प हो जाता होगा। वे ज्यादातर संकल्प करते नहीं हैं, सामनेवाले की प्रार्थना, श्रद्धा को देखकर हो जाता है।

हमारे परिचित एक संत ने मेरे ही सामने किसीकी चाँदी की अँगूठी उठाकर सोने की बना दी! लोहे के कड़े को सोने का बना दिया!

संकल्प-सामर्थ्य, मांत्रिक शक्ति, मानसिक शक्ति, सिद्धियों की शक्ति अथवा भगवत्कृपा की शक्ति से ऐसे कई चमत्कार दिखते हैं।

भक्त के जीवन में जो चमत्कार होते हैं, वे भगवद्भाव के अधीन होने से, भगवत्प्रेरणा से हो जाते हैं। योगी के जीवन में उसका योग-सामर्थ्य होता है। तत्त्ववेत्ता के जीवन में जो संकल्प-सामर्थ्य दिखता है, वह उसकी व्यापक वृत्ति और ब्राह्मी स्थिति में दृढ़ता के कारण दिखता है।

गुरुभक्त में भी कभी-कभी जो संकल्प-सामर्थ्य दिखता है, वह गुरु के प्रति उसके समर्पण के कारण होता है। यदि गुरुभक्त अपने संकल्प की हेकड़ी नहीं रखता और गुरु की 'हाँ' में 'हाँ' करता है तो उसके अपने संकल्प शांत हो जाते हैं और वह निःसंकल्पावस्था में आ जाता है। इससे शिष्य का संकल्प भी सफल होने लगता है। निःसंकल्प होने से संकल्प-सामर्थ्य संचित होता है।

जो भगवान के भक्त हैं, गुरु के भक्त हैं, सदाचारी और धर्मात्मा हैं उनके संकल्प में अच्छा-खासा बल होता है।

जैसे - गाँधीजी के संकल्प में बल था। उन्होंने ठान लिया कि शोषक अंग्रेजों को देश से भगाना है। किंतु सामने भी कोई अकेला व्यक्ति नहीं वरन् कई अंग्रेजों का संकल्प था कि भारत हमारे नियंत्रण में रहे।

इतने सारे लोगों के संकल्पों को काटना हो तो सामूहिक संकल्प चाहिए। सन् १९२० से गाँधीजी समाज में पूर्णरूप से प्रचार में लग गये और रामनाम का आश्रय लेकर सबके संकल्प को एक माला के रूप में गूँथ लिया। आखिर उनका संकल्प फला। १९४७ में अंग्रेज भारत छोड़कर चले गये यह दुनिया जानती है!

समय अधिक लगने का कारण? सामूहिक काम था किंतु समूह के संकल्पों में एकतानता नहीं थी। अपने ही लोग गाँधीजी का विरोध कर रहे थे कि 'अंग्रेजो! भारत छोड़ो...' यह कहना पागलपन है। ऐसा कभी हो सकता है क्या?' ऐसे मूर्खों के संकल्प नहीं होते तो २७ साल की जगह ७ साल में भी यह काम हो सकता था।

संकल्प को काटनेवाले विकल्प न हों तो संकल्प में अद्भुत सामर्थ्य आता है।

सन् १९९८ में अमेरिका ने ईराक पर हमला किया था तब रमजान का महीना था। उस समय भोपाल में हमारा सत्संग था (१८ से २० दिसम्बर)। उसमें कई मुसलमान श्रोता भी थे। मैंने कहा: 'यह पवित्र रमजान का महीना है। सब मिलकर भावना करो, प्रार्थना करो। युद्ध रुक जाय तो अच्छा है।' सभी के संकल्पों ने काम किया। तीसरे ही दिन आपने अखबारों में पढ़ा होगा कि युद्ध रुक गया!

अमृतसर में गीता भागवत सत्संग था। उन दिनों सीमा पर पाकिस्तान के साथ बड़ा तनाव हो गया था। अपने कई जवान तैनात हो गये थे कि 'अब युद्ध छिड़ा...' कई कप्तानों, सेनाधिकारियों और सैनिकों के माता-पिता मेरे पास आते और कहते कि 'बेटा गया है सीमा पर...'

मैंने उन दिनों 'ऋषि प्रसाद' में एक मंत्र छपवाया था ताकि यदि युद्ध हो तो उसमें विजय मिले, नहीं तो जिसमें दोनों का भला हो वह काम हो जाय। यह सामूहिक काम था तो सबसे प्रार्थना करने के लिए कहा। युद्ध टल गया। युद्ध टल जाने के और भी कारण होंगे किंतु साधकों के संकल्प के प्रभाव को भी अस्वीकार नहीं कर सकते। अब हिन्दुस्तान-पाकिस्तान आपस में नजदीक आ रहे हैं। हिन्दुस्तान ने दोस्ती के हाथ बढ़ाये हैं, पाकिस्तान ने भी इस बात की सराहना की है। हम दोनों को धन्यवाद देते हैं।

जो मारामारी के संकल्प हैं वे तुच्छ संकल्प हैं और जो समझौते के संकल्प हैं वे सात्त्विक और सज्जन

लोगों के संकल्प हैं। सज्जन यदि भोगी बनते हैं तो दुर्जनों के संकल्प उन पर हावी हो जाते हैं और यदि संयमी बनते हैं और संकल्पों में एकतानता होती है तो वे दुर्जनों को भी नियंत्रित करके सज्जन बना सकते हैं।

सारी सृष्टि संकल्पों का ही खेल है। एक दृढ़ संकल्पवाले व्यक्ति के आगे दुर्बल संकल्पवाला व्यक्ति हार जायेगा। बली व्यक्ति का संकल्प यदि सात्त्विक है तो हमारी मदद करेगा, शोषण नहीं करेगा। जैसे - संत का संकल्प है कि सब कथा सुनें, मंत्रजप करें। उनका संकल्प है इसलिए सबका हित करेगा। अगर हिटलर का संकल्प है तो हित की संभावनाएँ कम हो जाती हैं। वह तो अपना स्वार्थ सिद्ध करेगा।

काजु हमार तासु हित होई। यह महापुरुषों के संकल्प की विशेषता होती है।

आप सत्संग में बैठते हैं तो आपको लगता है 'अच्छा है, ऐसा होना चाहिए।' लेकिन जब आप समाज में जाते हैं तो लोगों के जो संकल्प हैं आपसे अपना मनभावन काम करवाने के, वे अपना प्रभाव दिखाते हैं। पति नहीं चाहता संसार-व्यवहार किंतु पत्नी के संकल्प जोर मारते हैं। कोई अफसर है और नहीं चाहता कि दफ्तर में गड़बड़ करूँ किंतु रिश्वतखोरों के बीच बेचारे का अपना शुद्ध संकल्प दब जाता है। ऐसा क्यों होता है ?

कभी-कभी साधक उत्तम संकल्प कर तो लेता है किंतु उसे निभा नहीं पाता, उत्तम फल को देख नहीं पाता क्योंकि वातावरण, माहौल जरा ऐसा ही है।

अब आप संकल्प दृढ़ करने में जो बाधाएँ आती हैं उनको दूर करने की एक युक्ति समझ लें : आप रक्षा-कवच उत्पन्न कीजिये ताकि आपके ऊपर इस लोक के व्यक्तियों का अथवा सूक्ष्म तत्त्वों का - किसीका प्रभाव न पड़े।

जब आप उन्नत होते हैं तो कई ऐसी शक्तियाँ हैं जो आपको हिलाने का प्रयत्न करेंगी। जैसे आप नौकरी या व्यवसाय में आगे बढ़ते हैं तो दूसरे विरोध करते हैं, ऐसे ही साधक जब साधना में आगे बढ़ता है तो उसके विरोधी भी बढ़ने लगते हैं। अतः आप एक रक्षा-कवच बना लें ताकि आपके शुभ संकल्पों की रक्षा हो और दूसरों के अशुभ संकल्प आपकी शक्ति का ह्रास न करें।

समझो, आप पर काम, क्रोध, लोभ, मोह हावी हो रहे हैं और आपकी शक्ति का ह्रास कर रहे हैं ता आप सुबह सूर्योदय से पहले स्नानादि करके तैयार हो जाइये और लंबा श्वास लेकर मन में भगवन्नाम का उच्चारण करके फिर दीर्घ प्रणव का उच्चारण कीजिये। आखिर में होंठ बंद कर लीजिये और संकल्प कीजिये कि 'मैं आज से ४० दिन तक संसार-व्यवहार में नहीं गिरूँगा।' फिर २१ बार जप कीजिये :

'ॐ अर्यमायै नमः।'

एक बार संकल्प करके फिर उसे तोड़े नहीं। संकल्प टूट जायेगा इस बात से डरें नहीं, वरन् एक-दूसरे से कह दें कि 'मैं गिरूँ तो तू बचाना, तू गिरे तो मैं बचाऊँगा।' एक बार अगर शुभ संकल्प में टिक गये तो उसका बल बढ़ जाता है।

कुछ सप्ताह ऐसा करेंगे तो आपके रोमकूपों से जो आभा निकलेगी उसका रक्षा-कवच बन जायेगा। फिर व्यवहारकाल में कभी विकल्प हुआ अथवा आपको गिरानेवाला कोई संकल्प हुआ तो रक्षा-कवच का चिन्तन करते ही तुरंत आपका आभामंडल (रक्षा-कवच) सारे विघ्नों को चीरता हुआ आपकी सुरक्षा करेगा।

इसी प्रकार क्रोधादि के लिए भी आप ४० दिन का प्रयोग कर सकते हैं। फिर आप कहीं भी जाओगे तो आपका स्वतंत्र आभामंडल होगा। वातावरण आपके अनुरूप हो जायेगा और आप विपरीत वातावरण में भी उससे अप्रभावित रहेंगे।

कुछ लोग सोचते हैं कि यहाँ ठीक नहीं, वहाँ ठीक है। कमजोर मन के लोग जगह बदलते रहते हैं, कार्य-सेवाएँ बदलते रहते हैं। नहीं, आप अपने मन के तुच्छ संकल्पों को हटाकर उन्नत होने का दृढ़ संकल्प करें और हर परिस्थिति में सुखी रहने का सामर्थ्य ले आयें।

मेरे मित्र संत थे घाटवाले बाबा। पूरे हरिद्वार का कूड़ा-कचरा जहाँ डाला जाता था, वहीं बैठे रहते थे। मैं उनसे कहता कि ''चलो, हमारे साथ। हम आपकी अलग से व्यवस्था करवा देंगे। बाउंड्री होगी, बगीचा होगा। आप मस्ती में रहियेगा।''

वे मेरी बात पर हँस देते थे। मैंने जब आग्रह किया तो उन्होंने बड़ी सुंदर बात कही : ''जो जहाँ है वहीं सुखी रहने की अगर उसमें कला नहीं है तो वह कहीं भी जायेगा तो सदा सुखी नहीं रह सकेगा।''

मन जीतिये

✲ ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज ✲

१. जब तक मन नहीं मरता, तब तक वेदान्त का ज्ञान अच्छा ही नहीं लगेगा । श्री विद्यारण्य स्वामी 'जीवन्मुक्ति विवेक' ग्रंथ में फर्माते हैं कि 'हजारों अंकुरों, डालियों और पत्तोंवाले संसाररूपी वृक्ष की जड़ मन ही है। अतः यह आवश्यक है कि संकल्प को दबाने के लिए मन का बल तथा रक्त सुखा देना चाहिए, मन को दबोचकर नष्ट कर देना चाहिए। ऐसा करने से यह संसाररूपी पेड़ सूख जायेगा।'

वे आगे चलकर कहते हैं : 'अब मैंने समझा। आत्मधन को चुरानेवाले चोर मन को मैंने अब समझा है। इसलिए उस मन को मारता हूँ। उसने बहुत दिनों से मुझे मारा है।'

वशिष्ठजी महाराज भी कहते हैं : 'नाना प्रकार के फलदाता इस संसाररूपी वृक्ष को जड़ से उखाड़ने का मात्र एक उपाय है - अपने मन को वश में करना। मन मतवाले का उठना और स्वच्छंद बनना ही मनुष्य के नाश का कारण है और मन का नष्ट होना उन्नति का कारण है।'

२. ज्ञानी का मन नाश को प्राप्त होता है और अज्ञानी के लिए मन बाँधनेवाली जंजीर है । जब तक परम तत्त्व के दृढ़ अभ्यास से अपने मन को जीता नहीं जाता, तब तक आधी रात को नृत्य करनेवाले प्रेतों-पिशाचों आदि की भाँति वह हृदय में नृत्य करता रहता है।

३. जिसके चित्त का अभिमान (मलिन अहंकार) अर्थात् धन आदि झूठे पदार्थों पर गर्व करना शांत हुआ है और जिसने इन्द्रियोंरूपी शत्रुओं को वश में किया है, उसकी भोग-वासनाएँ वैसे ही नष्ट हो जाती हैं जैसे जाड़े में कमल का फूल नष्ट हो जाता है। जो हाथ से हाथ को दबाकर, दाँतों से दाँत भींचकर, अंगों से अंग मरोड़कर पहले अपने मन को जीतते हैं, वे ही पुरुष इस विशाल संसार में भाग्यशाली बुद्धिमान हैं, ऐसे ही लोगों की गिनती मनुष्यों में हो सकती है।

४. हृदयरूपी वन में फन निकालकर बैठा हुआ साँप मन है । उसमें संकल्प-विकल्परूपी घातक विष है। ऐसा मनरूपी साँप जिसने मारा है, उस पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्र की भाँति निर्विकार पुरुष को मैं नमस्कार करता हूँ।

५. इस मायाचक्र के ठीक बीच में चित्त है। जो मनुष्य चारों ओर से चित्त पर आक्रमण करके स्थिर बनता है, उसको कोई बाधा नहीं पड़ती।

६. श्री गौड़पादाचार्य ने कहा है : 'सब योनियों का भय मन को वश में करने से ही नष्ट होता है। इसी प्रकार दुःख की निवृत्ति, ज्ञान और अक्षय (नष्ट न होनेवाली) शांति भी मन को वश में करने से ही है।'

७. जैसे स्वप्न की सृष्टि एक काल्पनिक बगीचा है और यह दृढ़ निश्चय है, वैसे ही यह जो संसार दिखता है, वह भी निश्चित ही एक काल्पनिक बाग है। जैसे स्वप्न की सृष्टि स्वप्न के समय ही सच्ची भासती है, उसके पहले और पीछे वह है ही नहीं, वैसे ही दुनिया भी तब तक भासती है जब तक पूर्णतः सत् का ज्ञान नहीं हुआ है । जैसे स्वप्न से जगने पर उसके असत् होने का पता लगता है, वैसे ही अपरोक्ष (यथार्थ) ज्ञान होने पर इस सृष्टि के न होने का भी पता लगता है।

प्रश्न है कि क्या ज्ञानियों को यह सृष्टि नहीं भासती ? इसका उत्तर यह है कि ज्ञानी को सृष्टि इस तरह भासती है, जिस तरह एक वैज्ञानिक को सिनेमा के दृश्य भासते हैं। वह जानता है कि जो कुछ दिखता है वह प्रकाश के अतिरिक्त कुछ नहीं है। ज्ञानी सृष्टि को मदारी का खेल ही जानता है।

८. संसार की सुन्दरता और आनंद अविचार के कारण ही भासते हैं, पर जब विचार से उसमें आनंद और सुन्दरता का भान निकल जाता है, तब उससे स्वतः घृणा हो जाती है। ऐसा निश्चय होने पर उसमें से आसक्ति निकल जाती है।

९. जिस प्रकार कामी-विषयी पुरुष सपने में देखी हुई स्त्री की प्राप्ति के लिए सपने के समय करोड़ रुपया भी देने के लिए तैयार होगा, परंतु जगने पर उस सपने की सुन्दर स्त्री की प्राप्ति के लिए एक पाई भी खर्चना स्वीकार नहीं करेगा, क्योंकि उसे पूरा निश्चय है कि वह सपनेवाली स्त्री सत् नहीं है। इसी प्रकार ज्ञानी, जिसने संसार को निश्चित रूप से स्वप्नवत् समझा है, वह इस संसार के प्रति कैसे आसक्ति रखेगा ?

१०. पूर्ण ज्ञानी समुद्र के समान है, जो वर्षा तथा नदियों के पानी को अपने में समा लेता है, फिर भी उसमें कोई न्यूनता या अधिकता नहीं होती। कुछ ज्ञानी संसार को ईश्वर की विभूति मानते हैं तो कुछ उसे असत् मानते हैं। ये दोनों भावनाएँ विषयों से बचने के साधन हैं। कोई भी भावना धारण करके कामनाओं को नष्ट करना चाहिए। मन को मारने से ही ज्ञान होगा और सच्चा सुख प्राप्त होगा।

११. मन की उच्च स्थिति और आत्म-स्थिति के लिए भगवान का नाम-स्मरण और भगवान के स्वरूप का चिन्तन है सुन्दर औषधि, बिल्कुल उपयोगी दवाई। नाम जपना और नामी के स्वरूप का चिन्तन करना, अपना विशेष स्वभाव बना देना चाहिए। इससे निश्चय ही मन अधिकार में होता है। निश्चित रूप से आत्मज्ञान की ज्योति उसमें जगती है। जैसे हम अज्ञान-अवस्था में अपने को शरीर समझते हैं, वैसे जब अपने को देह नहीं, लेकिन चेतन, अटल, सहज, सुखराशि समझेंगे, तभी हम वेदान्त के ज्ञान से आनंद का अनुभव करेंगे और सच्चा आनंद पायेंगे।

*

श्री उड़िया बाबाजी

[गतांक से आगे]

लीलाभूमि में

मोहनपुर से चलकर आप कासगंज होते हुए रामघाट पहुँचे। रामघाट और अनूप शहर के मध्यवर्ती गंगातट पर ही आप सबसे अधिक समय तक रहे हैं। इसलिए इसे आपकी लीलाभूमि कह सकते हैं।

इस भूमि में भी आप अधिकतर रामघाट और कर्णवास में ही रहे। इन्हीं दो स्थानों की झाड़ियों में ही आपकी अधिकांश तपस्या संपन्न हुई। यहाँ आप वि.सं. १९७२ के आषाढ़ मास में पहुँचे थे। इसके पश्चात् करीब-करीब १० वर्ष तक आपका जीवन अत्यंत वैराग्य और उपरति में ही व्यतीत हुआ। आपकी इस दीर्घकालीन तपस्या से इस प्रांत में आपका यश-सौरभ धीरे-धीरे फैलने लगा। यद्यपि आप जनसंपर्क से बहुत दूर जंगल-झाड़ियों में छिपे रहते थे तो भी आपके प्रेमी भक्त आपको ढूँढ़ ही लेते थे। इस समय स्त्रियों के संसर्ग से तो आपको इतनी घृणा थी कि आप जहाँ भी रहते वहाँ यह नियम बना देते कि 'यदि कोई स्त्री मेरी दृष्टि के अंतर्गत आ गयी तो मैं इस स्थान को त्याग दूँगा।' इसलिए भक्त लोग इस बात की बड़ी सावधानी रखते कि कोई भी स्त्री आपकी कुटी के पास न जाय। इस समय आपके ध्यान की अवस्था ऐसी प्रगाढ़ थी कि आप लगातार आठ-आठ घण्टे तक निश्चल आसन में बैठे रहते थे।

जिस समय आप रामघाट पहुँचे उसी समय बाबू रामसहाय आपके पास पहुँच गये। आपके वर्तमान भक्तों में उन्हें सबसे पुराना कहा जा सक

है। उन्होंने उसी समय आपसे प्रश्न पूछा : ''यद्यपि यह संसार स्वप्न है, किंतु जिसे यह स्वप्न हुआ है वह कौन है ?''

स्वामीजी : ''उसे तुम कैसे जानोगे ? तुम तो स्वप्नपुरुष हो और वह स्वप्नद्रष्टा है।''

बाबूजी : ''यदि हम स्वप्नपुरुष हैं तो उस स्वप्नद्रष्टा के जागने पर स्वयं ही हमारी मुक्ति हो जायेगी। फिर हम कोई साधन क्यों करें ?''

स्वामीजी : ''साधन के द्वारा तुम यह जान सकोगे कि वास्तव में वह स्वप्नद्रष्टा तुम ही हो और यह संसार तुम्हारा ही स्वप्न है। बस, जिस समय तुम्हें यह ज्ञान हो जायेगा उसी समय तुम्हारी मुक्ति हो जायेगी।''

बाबूजी के साथ आपकी बहुत देर तक इस तरह की बातचीत होती रही। वे आपके उत्तरों से बहुत प्रभावित हुए और तभी से आपके अनन्य सेवकों में गिने जाने लगे।

इसी जगह श्री उग्रानंदजी से भी आपकी भेंट हुई। वे बड़े मस्त फकीर थे। उनके वैराग्य को देखकर तो आपको भी प्रसन्नता हुई। उन्होंने आपको बतलाया कि आगे एक दौला (पं. दौलतरामजी जो आगे चलकर श्री अच्युत मुनि के नाम से प्रसिद्ध हुए) रहता है। वह बड़ा पण्डित है, उससे अवश्य मिलना।

रामघाट में आप शरद पूर्णिमा तक रहे। फिर यहाँ से नरवर, विहारघाट और कर्णवास होते हुए भृगुक्षेत्र पहुँचे।

इन दिनों भृगुक्षेत्र में श्री बंगाली बाबा, भूमानंदजी आदि कई उच्चकोटि के संत थे। इसलिए वहाँ कई सत्संगी आते-जाते रहते थे। जिस कारण वह स्थान एक ऋषिस्थान-सा जान पड़ता था। जिस दिन आप वहाँ पहुँचे उसी दिन श्री हरिबाबाजी भी पहली बार वहाँ आये। वे बड़े ही संयमशील, निष्ठावान, एकान्तसेवी और महान अध्यवसायी (उद्यमी) संत थे। आपके साथ हरिबाबा का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। भावुक भक्तों के लिए तो आप दोनों हरि-हर के समान एक प्राण दो देह थे।

भृगुक्षेत्र में पहुँचने के पश्चात् आपने पं. श्री दौलतरामजी से 'प्रस्थानत्रय' श्रवण किये। किंतु कुछ समय के बाद एक विशेष भगवत्प्रेरणा से आपकी ज्ञाननिष्ठा भक्ति में परिणत हो गयी और आप सर्वसाधारण में भगवन्नाम का प्रचार करने लगे। इस प्रांत में तो आपको भगवन्नाम-प्रचार का आचार्य कहा जा सकता है। आपकी विशेष ख्याति तो तब हुई जब आपके अदम्य उत्साह व परिश्रम से अनूप शहर के सामने २० मील लम्बा बाँध बनाया गया। इस प्रांत के सैकड़ों गाँवों को प्रतिवर्ष गंगा की बाढ़ से बड़ी हानि उठानी पड़ती थी। बाँध बनाने में अत्यंत व्यय होने के कारण सरकार भी इसे बनाने का साहस नहीं करती थी। किंतु आपका सुकोमल हृदय गरीब ग्रामीणों की यह दुर्दशा न देख सका। अतः आप स्वयं कुदाल लेकर खड़े हो गये। आपके सुदृढ़ संकल्प ने जनता को भी बल दिया और भगवत्कृपा से ६ मास में ही एक विशाल बाँध बनकर तैयार हो गया। इस बाँध पर मिट्टी की प्रत्येक टोकरी हरिनामोच्चारण के साथ पड़ी थी। इसलिए इस प्रांत के लोग इसे तीर्थवत् समझते थे। (क्रमशः)

गीता प्रश्नोत्तरी

५१. क्षत्रियों को युद्ध न करने से क्या हानि होती है ?
५२. मृत्यु से बढ़कर दुःख कौन-सा है ?
५३. अर्जुन को ऐसा कौन-सा कर्म करना चाहिए जिससे इस लोक में राज्यसुख मिले और परलोक में सद्गति हो ?
५४. किस विचार से युद्ध करने से पाप नहीं लगता ?
५५. किन पुरुषों की परमात्मा में निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती ?
५६. वेद किसका प्रतिपादन करते हैं ?
५७. मनुष्यों का अधिकार किसमें है ? कर्म करने में या फल भोगने में ?
५८. कर्मबंधन से छूटने का उपाय क्या है ?
५९. परमात्मा से नित्य संयोग कैसे होता है ?
६०. समाधि में स्थित पुरुषों का लक्षण क्या है ?

पिछले अंक के प्रश्नों के उत्तर : ४१. भक्ति मार्ग ४२. ज्ञान विज्ञान से ४३. शांति या मोक्ष ४४. अभ्यास से ४५. अविवाहित विजातीय स्त्री-पुरुष से उत्पन्न संतान को वर्णसंकर कहते हैं ४६. वर्णसंकर होने से पितर नरक में पड़ते हैं ४७. जिसमें यह सारा ब्रह्माण्ड टिका हुआ है ४८. शरीर ४९. आत्मा ५०. युद्ध।

क्या नहीं मिलता गुरुभक्तों को...

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

गुरुपूर्णिमा उत्सव सभी उत्सवों का सिरताज है। शास्त्रों में इस पर्व की बड़ी महिमा गायी गयी है, किंतु उसे वे ही समझ पाते हैं जो थोड़ा-बहुत गुरुप्रेम का आस्वादन कर चुके हैं।

भगवान श्रीराम, भगवान श्रीकृष्ण, संत कबीरदासजी, सुंदरदासजी महाराज, सहजोबाई, मीराबाई, स्वामी विवेकानंद और अनेकों नामी-अनामी गुरुभक्तों की जीवनगाथाएँ पढ़ें तो गुरुओं के प्रति सहज ही आदर हो जाता है किंतु वह आदर भी केवल बुद्धि तक ही रह जाता है। जिन्होंने सद्गुरु के साथ प्रेम करने की कला पायी है, गुरुतत्त्व के प्यार को झेला है, उन लोगों को शास्त्रों की बातें हृदयंगम हो जाती हैं। जो साधक-शिष्य सद्गुरु के प्रेम में थोड़ा भी बह चुका है, उसके लिए शास्त्रों की बातों को समझना आसान हो जाता है।

तुम्हारी बुद्धि गुरुभक्त से तर्क करके भले उसे निरुत्तर कर दे, किंतु जो भक्तिरस वह पाता है उसके आगे तुम्हारी बुद्धि नीरस सिद्ध होगी। तब भक्त ठहाका मारकर हँसेगा कि 'तुम्हें क्या पता ? गुरु जानें और मैं जानूँ।'

मैं कई बार कहता हूँ कि पैसा कमाने के लिए भी पैसा चाहिए। शांति पाने के लिए भी शांति चाहिए। प्रेम पाने के लिए भी प्रेम की कुछ बूँदें चाहिए। जब अलख के औलिया महापुरुषों के पास हम निःस्वार्थ, निःसंशय और तर्करहित होकर पहुँचते हैं, श्रद्धा के केवल दो आँसू लेकर पहुँचते हैं तो बदले में हमें अपने हृदय के द्वार खुलने का अनुभव होता है। इस बात को भी केवल गुरुभक्त ही जान सकता है, औरों को क्या पता ?

गुरुभक्त से कोई कहे कि 'तुम तो गुरु में अंधश्रद्धा रखते हो।' तो गुरुभक्त कहता है कि 'हाँ, हमारी श्रद्धा अंधी है, उसे अंधी ही रहने दो।' क्योंकि जीभ देख नहीं सकती और आँख चख नहीं सकती। आँख के पास देखने का सामर्थ्य है लेकिन वह स्वाद नहीं ले सकती। देखने की मजदूरी आँख करती है और स्वाद जीभ लेती है। ऐसे ही मजदूरी जगत में आसक्त बुद्धि करती है, शरीर करता है लेकिन स्वाद तो श्रद्धावाला हृदय ही ले पाता है।

हर मनुष्य के अंदर क्रियाशक्ति, भावशक्ति और ज्ञानशक्ति होती है। ज्ञानशक्ति को हमने जगत की चीजों को जानने में खर्च कर दिया, भावशक्ति को मोह-ममता के व्यवहार में खर्च कर दिया और क्रियाशक्ति को जगत की क्रियाओं में खर्च कर दिया है। न हमारी क्रिया ठीक जगह पर लगी, न हमारा भाव ठीक जगह पर लगा, न हमारा ज्ञान ही ठीक जगह पर लगा।

क्रियाशक्ति को निष्काम सेवा में लगाओ, ज्ञानशक्ति को शाश्वत ज्ञान पाने में तथा भावशक्ति को भगवद्भाव में लगाओ। मन में ब्रह्मवेत्ता गुरु के प्रति आलोचना का कोई भाव न हो, कोई मापने-तौलने की दृष्टि न हो, केवल प्रेमभाव से, अहोभाव से तुम उनकी ओर निहारोगे तो आज नहीं तो कल तुम्हारे भीतर भी परमात्म-प्रेम के द्वार खुल जायेंगे।

कबीरजी कहते हैं :

अलख पुरुष की आरसी साधु का ही देह।
लखा जो चाहे अलख को इन्हींमें तू लख लेय।

परमात्मा अलख है, उसको कैसे लखा जाय ? मन-बुद्धि की उस तक पहुँच नहीं है तो उसको कैसे पायें ? परमात्मा अपनी खबरें देता है किसी मानव-तन के द्वारा ही। जिस तन से उसकी खबरें प्रकट होती हैं, वे ही मानव-गुरु कहलाते हैं, सद्गुरु कहलाते हैं।

ऐसे गुरु धार्मिकों की धर्म की भावना छुड़ाकर उन्हें धर्म से भी परे ले जाते हैं। नेता को नेतागिरी एवं धनवान को धन की याद से हटाकर आत्मस्वरूप की खबरें देते हैं। परमात्मा अपनी खबरें देने

लिए सद्गुरुओं के शरीर से ही चेष्टा करता है।

कबीरजी कहते हैं :

सुख देवें दुःख को हरें करें पाप का अंत ।
कह कबीर वे कब मिलें परम सनेही संत ॥
संत मिलें यह सब मिटे काल-जाल जम चोट ।
सीस नमावत ढहि पड़े सब पापन की पोट ॥

तुम जब तक पाँच कोषों में रहोगे तब तक काल का जाल और यम की चोट नहीं मिटेगी। किंतु जो अलख पुरुष हैं, वे अन्नमय कोषवाले को प्राणमय कोष में, प्राणमय कोषवाले को मनोमय कोष में, मनोमय कोषवाले को विज्ञानमय कोष में, विज्ञानमय कोषवाले को आनंदमय कोष में ले जाते हैं। फिर यदि कोई आनंदमय कोष में रुकता है तो वहाँ भी उसे सदुपदेश के साथ संकल्प-सहयोग देते हैं कि 'तुम ये पाँच कोष नहीं बल्कि इनके अधिष्ठान चैतन्य-आत्मा हो।' और उसे कोषातीत, गुणातीत आत्मा-परमात्मा में प्रतिष्ठित कर देते हैं। यह उनका फर्ज नहीं है कि वे हमारा उद्धार करें अथवा हमारा उद्धार करने के लिए आयें किंतु उनके द्वारा स्वाभाविक ही ऐसी चेष्टाएँ होने लगती हैं। जैसे बर्फ का स्वभाव है शीतलता देना, सूर्य का स्वभाव है प्रकाश देना, वैसे ही ज्ञान, प्रेम और क्रिया में निर्लिप्तता - यह उनका स्वभाव है। उनका स्वनिर्मित विनोद - समाज का सर्वांगीण विकास।

हम जितना-जितना उनके सान्निध्य में आते हैं, सत्संग सुनते हैं उतना-उतना उनके स्वभाव में अपने स्वभाव को मिलाते जाते हैं। जब वह पूर्ण मिल जाता है तो...

सत्यस्वरूप के अनुभव से संपन्न सद्गुरु के सान्निध्य में जिस साधक की सच्ची यात्रा हुई है उस साधक को क्या मिलता है ? जिसके हृदय में सद्गुरु का ज्ञान प्रकट हो गया, आध्यात्मिक गुरु से जिसकी एकाकारता हो गयी उसकी क्या स्थिति होती है ?

गुरु मिला तब जानिये, मिटे शोक संताप ।
राग द्वेष व्यापे नहीं, फिर गुरु अपने आप ॥

जिसने गुरु को अपना पूरा हृदय दे दिया है और गुरु के सिद्धांतों को पचा लिया है, ऐसा उत्तम शिष्य स्वयं गुरु हो जाता है। उसको न राग व्यापता है न द्वेष, न हर्ष-शोक न वैर।

हर्ष-शोक जाको नहीं, वैरी मीत समान ।
कह नानक सुन रे मना, मुक्त ताहि को जान ॥

गुरु-अवहेलना का परिणाम !

*** संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ***

जिनके जीवन में गुरुकृपा रही, जिन्होंने गुरुकृपा को पचाया, वे चाहे पठित हों या कम पढ़े-लिखे हों अथवा अनपढ़ ही क्यों न रहे हों किंतु ऊँचे अनुभवों के अधिकारी अवश्य रहे हैं। जिन्होंने गुरु की करुणा-कृपा का दुरुपयोग किया, गुरु की अवहेलना की, गुरु की बात का अनादर किया अथवा गुरु को धोखा दिया उनको बहुत दुःख देखने पड़े और उनका किया-कराया सब चौपट हो गया।

आत्मानंद नाम के एक संत थे। उन्हें दमे की तकलीफ थी। उनके शिष्य नारायण स्वामी उनकी बहुत सेवा करते थे।

नारायण स्वामी का हिन्दी, फारसी और उर्दू पर बड़ा अधिकार था। उनकी सभा में मुसलमान भी सत्संग सुनते थे और हिन्दू भी। हिन्दुओं की सभा में वे वैदिक उपदेश देते, तो मुसलमानों की सभा में इसलाम पर उपदेश देने का भी सामर्थ्य उनमें था।

नारायण स्वामी इतने समर्थ कैसे हुए ? वे आत्मानंदजी की सेवा में रहते थे। आत्मानंदजी उन पर बड़े प्रसन्न रहते थे। वे कहते कि 'बेटा ! जग में तुम्हारा नाम रहेगा।'

दूसरे एक शिष्य हो गये कृष्णानंद। कृष्णानंद न्यायशास्त्र में अच्छी पदवी प्राप्त करके आये थे। एक दिन उन्होंने अपने गुरु से ही कहा : ''गुरुजी ! आइये, जरा शास्त्रार्थ हो जाय।''

गुरु ने कहा : ''विद्वत्ता का इतना अहंकार करता है ? मुझसे ही शास्त्रार्थ करने की हिम्मत

रखता है ? हमने तो थोड़ा-बहुत ही पढ़ा है, तू काशी पढ़कर आया है । बड़ा विद्वान बन रहा है । जा, कुत्ते की नाईं भौंकता रह ।''

नवद्वीप के महामहोपाध्याय स्वामी केशवानंद (कनखल में जिनका स्थान है) बड़े भारी विद्वान थे । उनके पास आकर कृष्णानंद ने कहा : ''आप मेरे साथ शास्त्रार्थ करें ।''

केशवानंद ने कहा : ''भगाओ, इस कुत्ते को ।''

भक्त कृष्णानंद के पीछे पड़ गये । कहाँ तो न्यायशास्त्र का विद्वान और कहाँ केशवानंद और उनके भक्तों ने भगा दिया ! गुरु ने 'कुत्ता' कहकर दुत्कार दिया तो केशवानंद के पास से भी 'कुत्ता' कहकर भगा दिया गया !

अखंडानंदजी एक संत को जानते थे । वे श्लोक तो बोलते थे किंतु व्याख्या करने में गड़बड़ा जाते थे । अखंडानंदजी ने पूछा : ''आप बड़े विद्वान हैं । श्लोक तो बोलते हैं किंतु व्याख्या नहीं कर सकते ?''

तब उन्होंने कहा : ''मैं जब गुरुजी के आश्रम में ठहरा था । गुरुजी जो काम कहते वह करता । एक बार आश्रम में एक कुटिया बन रही थी । चूना, रेत और ईंटें लानी थीं । गुरुजी ने मुझसे कहा : ''सेवा में लग जाओ ।''

पहले तो मैं लग जाता था लेकिन अब विद्वान होकर कथाएँ करने लगा था । मैंने कहा : ''गुरुजी ! यह काम अनपढ़ लोगों का है । मैं तो कथा करता हूँ ।''

गुरुजी ने कहा : ''जा, तू मूर्ख रहेगा ।''

अब मैं श्लोक बोलता हूँ किंतु व्याख्या नहीं कर पाता । फिर मैं गुरुजी की शरण में गया, उनसे प्रार्थना की, तब उन्होंने कहा : ''६ साल के बाद फिर से विद्या आ जायेगी ।'' अभी साढ़े चार साल पूरे हो गये हैं, डेढ़ साल बाकी है ।''

कैसी है इन परमात्म-प्राप्त महापुरुषों की महिमा और सत्यसंकल्प-अवस्था !

जो अपने संगीत से बुझे दीप जला सकता था, बरसात करवा सकता था, अकबर जैसे को भी दीवाना कर सकता था उस तानसेन के पास ऐसी योग्यता कहाँ से आयी ? उसने गुरु हरिदास की करुणा-कृपा पचायी थी ।

तमाम प्रकार के विरोधों के बीच भी जो आर्यसमाज की स्थापना करने में सफल हुए, जिनके पदचिह्नों पर आज लाखों आर्यसमाजी चल रहे हैं और करोड़ों लोग जिन्हें जानते हैं उन स्वामी दयानंदजी में इतनी योग्यता कहाँ से निखरी ?

स्वामी दयानंद के गुरु विरजानंद सूरदास थे । स्वामी दयानंद गुरु के लिए घड़े भर-भरकर पानी लाते थे । कहीं गलती हो जाती तो विरजानंदजी दयानंद की पिटाई तक कर देते !

एक बार विरजानंदजी बहुत गुस्से में आकर दयानंदजी को पीटने लगे । पीटते-पीटते कहीं गुरुजी के हाथ को चोट न लग जाय ऐसा सोचकर दयानंदजी ने डंडा उठाकर गुरुजी को दिया और कहा : 'गुरुजी ! मेरी गलती है । आप मुझे सुधारना चाहते हैं किंतु पीड़ा आपके हाथ को होती है । इसलिए कृपा करके इस डंडे से पीटिये । आपके हाथ को तकलीफ न हो ।'

कैसे रहे होंगे दयानंदजी !

सद्‌गुरु का हृदय ऐसे शिष्यों के लिए छलक पड़ता है । वही दयानंदजी आगे चलकर आर्यसमाज के संस्थापक बने ।

कबीरजी स्कूली विद्या पढ़े-लिखे नहीं थे, फिर भी उनकी साखियाँ एम.ए. के पाठ्यक्रम में हुआ करती हैं । उनकी साखियों को लाखों लोग आदर से पढ़ते-सुनते हैं । सभी मत-संप्रदाय के लोग उन्हें आदर की दृष्टि से देखते हैं । क्यों ? क्योंकि उन्होंने गुरु रामानंदजी की करुणा-कृपा को पचाया था ।

एक साधारण लड़के चंद्रगुप्त मौर्य में इतना सामर्थ्य कहाँ से आया कि वह विदेशियों से टक्कर लेने में समर्थ बना और सुप्रसिद्ध सुदृढ़ शासक बन गया ? गुरु चाणक्य के सान्निध्य से ।

जिनको गुरु की कृपा मिली है, वे चाहे कवि हों, प्रचारक हों, शासक हों या साधक हों, उनका इहलोक और परलोक - दोनों सुखमय हो जाते हैं । किंतु जो गुरु की अवहेलना करते हैं, वे मन के कहने में आकर भटकते ही रहते हैं, चौरासी-चौरासी लाख माताओं के गर्भों में उलटे लटकते ही रहते हैं ।

विद्यार्थी-प्रश्नोत्तरी

※ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ※

(प्राचीन काल में गुरुकुल शिक्षापद्धति प्रचलित थी। गुरु के चरणों में बैठकर विद्यार्थी विद्या प्राप्त करते थे। आज पूज्यश्री के सान्निध्य में होनेवाले विद्यार्थी शिविरों में वही वातावरण दृष्टिगोचर होता है। विद्यार्थियों की विविध शंकाओं को भाँपकर पूज्यश्री उनका अत्यंत सरल और सुबोध भाषा में उत्तर दे रहे हैं :)

प्रश्न : गुरुजी ! नास्तिक किसे कहते हैं और आस्तिक किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो भगवान की सत्ता और परलोक को मानता है तथा सत्य, संयम, सदाचार को अपनाकर इहलोक एवं परलोक में सुखी होने का यत्न करता है वह आस्तिक है।

जो भगवान और परलोक को नहीं मानता, उसे नास्तिक कहते हैं। नास्तिक को ईश्वर की अदृश्य सहायता से वंचित रहना पड़ता है।

जैसे - अगर कोई सरकार को न माने और किसीका खून कर दे, तब भी उस पर अपराध की कलम तो लग ही जाती है। कारावास और पुलिस के डंडे सहने ही पड़ते हैं। ऐसे ही परलोक को न मानने पर भी पाप-पुण्य का फल तो भोगना ही पड़ता है।

प्रश्न : गुरुजी ! परलोक क्या होता है ?

उत्तर : मनुष्य मरने के बाद अपने पाप के फलस्वरूप नरक को पाता है और पुण्य के फलस्वरूप स्वर्ग को पाता है। सामान्य पुण्य-पाप तो यहीं सुख-दुःख दे देते हैं किंतु विशेष पुण्य-पापों को भोगने के लिए मरने के बाद सूक्ष्म शरीर (जो इस दिखनेवाले शरीर के भीतर होता है) को भोगयोनि का शरीर मिलता है। पाप ज्यादा होते हैं तो उस शरीर से नरक में अथाह पीड़ा सहता है, फिर भी मरता नहीं है। उसे अग्नि में डालने पर या पानी में डुबोने पर भी वह मरता नहीं, केवल पीड़ा सहता है।

पुण्य ज्यादा होते हैं तो वह स्वर्ग के सुख भोगता है। स्वर्ग में रहकर वह स्वर्ग के भोग तो भोगेगा किंतु वृद्ध नहीं होगा, उसके शरीर पर झुर्रियाँ नहीं पड़ेंगी।

मरने के बाद भी जहाँ जाकर पुण्य-पाप भोगने की व्यवस्था है, उसे परलोक कहते हैं।

प्रश्न : जो पापकर्म करते हैं वे सुखी दिखते हैं और जो पुण्यात्मा हैं वे दुःखी दिखते हैं, ऐसा क्यों ?

उत्तर : मनुष्य पाप करने के कारण सुखी और पुण्य करने के कारण दुःखी होता है, ऐसी बात नहीं है। चोरी करके मनुष्य सुखी है अथवा सच्चाई से जीने के कारण दुःखी है, ऐसी बात भी नहीं है। वास्तव में मनुष्य पूर्व के पुण्यकर्मों और ऊँची समझ के कारण सुखी और पूर्व के पापकर्मों और नीची समझ के कारण दुःखी दिखता है।

जैसे - चक्की में तुमने पहले गेहूँ डाले और फिर बाजरा डाला। अब चक्की से थोड़ी देर तक गेहूँ का आटा ही निकलेगा क्योंकि पहले गेहूँ डाले थे। गेहूँ खत्म होंगे तब बाजरे का आटा निकलने लगेगा। ऐसे ही अभी कोई व्यक्ति पापकर्म कर रहा है किंतु अगर अभी उसके पुण्यकर्मों का फल देने का समय चल रहा हो तो वह सुखी दिखाई देगा। इसी प्रकार अभी अगर कोई पुण्यकर्म कर रहा है किंतु वर्तमान में उसके पूर्व के पापकर्मों का फल देने का समय चल रहा हो तो वह पुण्यकर्म करते हुए भी दुःखी दिखाई देगा।

किसीको अपने गलत कर्मों का फल तुरंत भी मिल जाता है क्योंकि भगवान अपने कृपापात्र की गलती ज्यादा देर तक नहीं ढाँकते, तुरंत फल देकर उसकी गलती सुधार देते हैं ताकि वह विषय-विकार या पाप में न पड़े। यदि कभी गलती से वह इनमें पड़ भी जाता है तो पूर्व के पुण्य उसे बचा लेते हैं और वह प्रायश्चित करके अपने पाप मिटा देता है। किंतु जो पापी हैं, अपनी गलती नहीं मानते हैं, वे नरकों में पड़ते हैं; फिर अगले जन्म में गधा, बैल, भैंस, सुअर आदि किसी नीच योनि में जन्म लेते हैं। जो पुण्यात्मा हैं वे उच्च कुल में जन्म लेते हैं।

'निरुपमेय हैं सद्गुरु !'

महाराष्ट्र में एक प्रसिद्ध ब्रह्मनिष्ठ संत हो गये- समर्थ रामदास । अपने ग्रंथ दासबोध के प्रारंभिक चरण में ही उन्होंने सद्गुरु की महिमा गायी है । सद्गुरु की महिमा का सम्पूर्ण वर्णन करना असंभव है यह बात वे जानते थे, फिर भी माया का आश्रय लेकर उन्होंने हृदय को पावन करने हेतु सद्गुरु-महिमा का वर्णन किया है और उसके आगे सभी उपमाओं का छोटापन सिद्ध किया है । वे अपना निष्कर्ष लिखते हैं : 'निरुपमेय हैं सद्गुरु ! उनकी पूर्ण महिमा, उनकी भीतरी स्थिति वे ही जानें...'

आइये, उनके द्वारा गायी गयी सद्गुरु-स्तुति का लाभ लेकर आप-हम अपने हृदय को पावन करें :

सद्गुरु का वर्णन नहीं हो सकता । जिन्हें माया स्पर्श भी नहीं कर सकती, उनका स्वरूप भला मेरे समान अज्ञानी को कहाँ से विदित हो सकता है ? जिनके सम्बन्ध में श्रुति भी 'नेति-नेति' कहती है, (अर्थात् जिसका अंत श्रुति को भी नहीं मिलता) उन तक मुझ मूर्ख की मति भला कैसे पहुँच सकती है ? वह मेरी समझ के बाहर है, इसलिए उन गुरुदेव के चरणों में मेरा दूर से ही नमस्कार है । हे गुरुदेव ! मुझे वह शक्ति दीजिये जिससे मैं आपका पार पा सकूँ । अतः हे सद्गुरु स्वामी ! आप जैसे हो, वैसे ही रहो । मैं माया के बल से आपका स्तवन करना चाहता था; पर जब स्वयं माया ही लज्जित हो गयी, तब मैं क्या कर सकता हूँ ? वास्तव में परमात्मा नहीं मिलता, इसीलिए प्रतिमा स्थापित करनी पड़ती है । बस इसी प्रकार मैं भी माया के योग से ही सद्गुरु की महिमा का वर्णन करूँगा । जिस प्रकार अपने भाव के अनुसार मन में देवता का ध्यान किया जाता है, उसी प्रकार मैं भी सद्गुरु का स्तवन करूँगा । हे सद्गुरुराज ! आपकी जय हो । हे विश्वम्भर, विश्वबीज; परम पुरुष, मोक्षध्वज, दीनबंधु ! आपकी जय हो । आपके अभय हाथों से यह माया उसी प्रकार नष्ट हो जाती है, जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश से अंधकार नष्ट हो जाता है । सूर्य से अंधकार अवश्य नष्ट होता है, पर हमारे सद्गुरु स्वामी की यह बात नहीं है । वे जन्म-मृत्यु तथा अज्ञान का जड़ से ही नाश कर देते हैं । जिस प्रकार सोना कभी लोहा नहीं हो सकता, उसी प्रकार सद्गुरु का दास कभी संदेह में नहीं पड़ सकता । गंगा में जो नदी मिलती है, वह भी गंगा ही हो जाती है । फिर वह नदी किसी प्रकार गंगा से अलग नहीं हो सकती । पर जब तक वह नदी गंगा में नहीं मिलती तब तक वह 'नदी' ही कहलाती है, 'गंगा' नहीं कहलाती । पारस किसी पदार्थ को अपने समान पारस नहीं बना सकता; सोना कभी लोहे का रूप नहीं बदल सकता; पर शिष्य की यह बात नहीं है । वह पूर्णरूप से स्वामी ही हो जाता है । फिर सद्गुरु का भक्त अपने उपदेश से बहुत-से लोगों को सद्गुरु बना देता है । शिष्य को गुरुत्व प्राप्त हो जाता है, पर पारस से बनाये हुए सोने से कोई चीज सोना नहीं बनायी जा सकती; इसलिए पारस के साथ गुरु की उपमा ठीक नहीं बैठती । यदि सद्गुरु को सागर की उपमा दी जाय तो वह बहुत ही खारा है । यदि क्षीर सागर की उपमा दी जाय तो उसका भी कल्पांत में नाश हो जाता है । यदि मेरु की उपमा दी जाय तो वह जड़ और कठोर पाषाण है । पर सद्गुरु की यह बात नहीं है । वे दीनों के लिए बहुत कोमल हैं । यदि उन्हें आकाश की उपमा दी जाय तो सद्गुरु का रूप आकाश से भी अधिक सूक्ष्म तथा निर्गुण है । इसलिए वह उपमा भी हीन ही ठहरती है । यदि धीरता में पृथ्वी की उपमा दी जाय तो वह भी कल्पांत में नष्ट हो जायेगी, अतः धीरता की उपमा के लिए वसुंधरा भी हीन ही है । यदि सूर्य की उपमा दें तो उसका प्रकाश ही कितना है ! शास्त्र उसकी मर्यादा बतलाते हैं पर सद्गुरु अमर्याद हैं । सद्गुरु ज्ञान का बहुत अधिक प्रकाश करनेवाले हैं । इससे सूर्य भी उपमा के योग्य नहीं है । यदि

उन्हें शेषनाग की उपमा दी जाय तो भी उचित नहीं है क्योंकि शेषनाग भी भार ढोनेवाले हैं। यदि जल की उपमा दें तो वह भी कालांतर में सूख जाता है। पर सद्गुरु निश्चल हैं, वे कभी जा नहीं सकते। यदि सद्गुरु को अमृत की उपमा दी जाय तो अमर लोग भी मृत्यु के मार्ग का अवलम्बन करते हैं। पर सद्गुरु की कृपा सचमुच अमर करनेवाली है। यदि सद्गुरु को कल्पतरु कहें तो भी ठीक नहीं, क्योंकि सद्गुरु का रूप कल्पनातीत है। तो भला कल्पवृक्ष की उपमा कौन ग्रहण करेगा ? जहाँ मन में चिन्ता ही नहीं है, वहाँ चिन्तामणि को भला कौन पूछेगा ? जो निष्काम हैं, उन्हें कामधेनु के दूध से क्या मतलब ? यदि सद्गुरु को लक्ष्मीवान कहें तो लक्ष्मी भी नष्ट हो जानेवाली चीज है। और फिर स्वयं मोक्षलक्ष्मी सदा सद्गुरु के द्वार पर खड़ी रहती है। स्वर्गलोक तथा इन्द्र की सम्पत्ति का भी कालांतर में नाश हो जाता है, पर सद्गुरु-कृपा सदा बनी रहती है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि सभी समय पाकर नष्ट हो जाते हैं; एक सद्गुरु के चरण ही सदा अविनश्वर रहते हैं। फिर भला उन्हें किसकी उपमा दी जाय ? सारी सृष्टि ही नष्ट हो जाती है। उनके सामने पंचभौतिक वस्तुओं का कुछ वश ही नहीं चलता। इसलिए मैं तो सद्गुरु का वर्णन यही कहकर करता हूँ कि सद्गुरु का वर्णन हो ही नहीं सकता। उनकी भीतरी स्थिति केवल अंतर्निष्ठ या आत्मानुभव करनेवाले लोग ही जान सकते हैं।

*

"वे गुरु गुरु नहीं है जो शिष्य को हमेशा के लिए शिष्य ही बनाये रखना चाहते हैं। सद्गुरु वे ही हैं जो शिष्य को जीवत्व से हटाकर शिवत्व में जगा दें, शिष्यत्व से हटाकर गुरुत्व में जगा दें, आत्मज्ञान का अमृत-सिंचन करके निर्विषय सुख में सैर करा दें, ध्यान और ज्ञान की अमृतधारा में नहलाकर परम पद का अमृत-प्रसाद दें।"

– संत श्री आसारामजी बापू

हरीतकी (हरड़)

भारत में विशेषतः हिमालय में कश्मीर से आसाम तक हरीतकी के वृक्ष पाये जाते हैं। आयुर्वेद ने इसे अमृता, प्राणदा, कायस्था, विजया, मेध्या आदि नामों से गौरवान्वित किया है। हरीतकी एक श्रेष्ठ रसायन द्रव्य है।

इसमें लवण छोड़कर मधुर, अम्ल, कटु, तिक्त, कषाय ये पाँचों रस पाये जाते हैं। यह लघु, रुक्ष, विपाक में मधुर तथा वीर्य में उष्ण होती है। इन गुणों से यह वात-पित्त-कफ इन तीनों दोषों का नाश करती है।

हरड़ (हरीतकी) शोथहर, व्रणशोधक, अग्निदीपक, पाचक, यकृत-उत्तेजक, मल-अनुलोमक, मेध्य, चक्षुष्य और वयःस्थापक है। विशिष्ट द्रव्यों के साथ मिलाकर विशिष्ट संस्कार करने से यह विविध रोगों में लाभदायी होती है। पाचन-संस्थान पर इसका कार्य विशेष रूप से दिखाई देता है।

मेध्य, इन्द्रियबलकर, चक्षुष्य : हरड़ मेध्य है अर्थात् बुद्धिवर्धक है और नेत्र तथा अन्य इन्द्रियों का बल बढ़ाती है। घी, सुवर्ण, शतावरी, ब्राह्मी आदि अन्य द्रव्य अपने शीत-मधुर गुणों से धातु तथा इन्द्रियों का बल बढ़ाते हैं, जबकि हरड़ विकृत कफ और मल का नाश करके बुद्धि एवं इन्द्रियों का जड़त्व नष्ट करके उन्हें कुशाग्र बनाती है। शरीर में मल-संचय होने पर बुद्धि तथा इन्द्रियाँ बलहीन हो जाती हैं। हरड़ इस संचित मल का शोधन करके धातुशुद्धि करती है। इससे बुद्धि तथा इन्द्रियाँ निर्मल व समर्थ बन जाती हैं। इसलिए हरड़ को 'मेध्या' कहा गया है।

हरड़ नेत्रों का बल बढ़ाती है । नेत्रज्योति बढ़ाने के लिए त्रिफला (हरड़, बहेड़ा व आँवले का समभाग मिश्रण) श्रेष्ठ द्रव्य है । २ ग्राम त्रिफला चूर्ण घी तथा शहद के विमिश्रण (अर्थात् घी अधिक और शहद कम या शहद अधिक और घी कम) के साथ अथवा त्रिफला घी के साथ लेने से नेत्रों का बल तथा नेत्रज्योति बढ़ती है ।

रसायन कार्य : हरड़ साक्षात् धातुओं का पोषण नहीं करती, बल्कि धात्वग्नि बढ़ाती है, जिससे नये उत्पन्न होनेवाले रसरक्तादि धातु शुद्ध-प्राकृत बनने लगते हैं । धातुओं में स्थित विकृत कफ तथा मल का पाचन व शोधन करके धातुओं को निर्मल बनाती है । सभी धातुओं व इन्द्रियों का प्रसादन करके यौवन की रक्षा करती है, इसलिए इसे 'कायस्था' कहा गया है ।

स्थूल व्यक्तियों में केवल मेद धातु का ही अतिरिक्त संचय होने के कारण अन्य धातुएँ क्षीण होने लगती हैं, जिससे बुढ़ापा जल्दी आने लगता है । हरड़ इस विकृत मेद का लेखन व क्षरण (नाश) करके अन्य धातुओं की पुष्टि का मार्ग प्रशस्त कर देती है, जिससे पुनः तारुण्य और ओज की प्राप्ति होती है । लवण रस मांस व शुक्र धातु का नाश करता है जिससे वार्धक्य जल्दी आने लगता है, अतः नमक का उपयोग सावधानीपूर्वक करें । हरड़ में लवण रस न होने से तथा विपाक में मधुर होने से वह तारुण्य की रक्षा करती है । रसायन कर्म के लिए ऋतु तथा दोष के अनुसार विभिन्न अनुपानों के साथ हरड़ का प्रयोग करना चाहिए ।

ऋतु अनुसार हरड़-सेवन के लिए अनुपान

ऋतु	अनुपान	ऋतु	अनुपान
वर्षा	- सैंधव	शरद	- शर्करा
हेमंत	- सोंठ	शिशिर	- पीपर
वसंत	- शहद	ग्रीष्म	- गुड़

दोषानुरूप अनुपान : कफ में हरड़ और सैंधव । पित्त में हरड़ और मिश्री । वात में हरड़ घी में भूनकर अथवा मिलाकर दें ।

सेवन-विधि : हरड़ चबाकर खाने से भूख बढ़ती है । पीसकर फाँकने से मल साफ आता है । सेंककर खाने से त्रिदोषों को नष्ट करती है । खाना खाते समय खाने से यह शक्तिवर्धक और पुष्टिकारक है । सर्दी, जुकाम तथा पाचनशक्ति ठीक करने के लिए भोजन करने के बाद इसका सेवन करें ।

मात्रा : ३ से ४ ग्राम ।

यदि आप लम्बी जिंदगी जीना चाहते हैं तो रात को छोटी हरड़ (हर्र) पानी में भिगो दें । पानी इतना ही डालें कि ये सोख लें । प्रातः उनको देशी घी में तलकर काँच के बर्तन में रख लें । २ माह तक रोज १-१ हरड़ सुबह-शाम खाते रहें । इससे शरीर हृष्ट-पुष्ट होगा ।

आयुर्वेद के श्रेष्ठ आचार्य वाग्भट्ट के अनुसार हरड़ चूर्ण घी में भूनकर नियमित रूप से सेवन करने से तथा भोजन में घी का भरपूर उपयोग करने से शरीर बलवान होकर दीर्घायु की प्राप्ति होती है ।

सावधानी : अति श्रम करनेवाले, दुर्बल, उष्ण प्रकृतिवाले एवं गर्भिणी को तथा रक्तदोष, पित्तदोष व ग्रीष्म ऋतु में हरड़ का प्रयोग नहीं करना चाहिए ।

औषधि-प्रयोग

१. मंदाग्नि : तिक्त रस व उष्णवीर्य होने से यह यकृत को उत्तेजित करती है । पाचक स्राव बढ़ाती है । आमाशयस्थ विकृत कफ का नाश करती है । अग्निमांद्य, ग्रहणी (अतिसार), उदरशूल, अफरा आदि रोगों में विशेषतः छोटी हरड़ चबाकर खाने से लाभ होता है ।

२. मलावरोध : ३ से ५ ग्राम हरड़ चूर्ण पानी के साथ लेने से मल का पाचन होकर वह शिथिल व द्रवरूप में बाहर निकलता है, जिससे कब्ज का नाश होता है ।

*

दमा व खाँसी में पीपल के पत्तों का प्रयोग

पीपल के सूखे पत्तों को खूब कूटें । जब चूर्ण बन जाय तब उसे कपड़े से छान लें । एक माह तक रोज सुबह लगभग आधा तोला (६ ग्राम) चूर्ण में शहद मिलाकर चाटने से दमा व खाँसी में स्पष्ट लाभ होता है ।

बहु-उपयोगी फिटकरी

फिटकरी एक उत्तम कोटि की पूतिरोधी (एन्टीसेप्टिक) है। इसमें कीटाणुओं का शमन करने की अद्वितीय क्षमता है। इसलिए दाढ़ी बनाने के बाद चेहरे पर फिटकरी घिसी जाती है। जो दाढ़ी-मूँछवाले सज्जन अपनी जेब को अनावश्यक रूप से खाली होने से बचाना चाहते हैं, महँगे व कृत्रिम विलेपनों (क्रीम्स) के उपयोग से बचना चाहते हैं, वे दाढ़ी बनाने के बाद फिटकरी के टुकड़े का उपयोग कर सकते हैं।

जलशोधन के लिए कारखानों में फिटकरी का उपयोग किया जाता है। इसे निर्मली भी कहते हैं। यह वायु की मलिनता को दूर करती है। घर के वातावरण में ऋणायन की शुद्धि करती है। निर्मली पानी के कीटाणुओं को नष्ट करती तथा मैल को हरती है।

इसके अलावा इसमें एक और दिव्य गुण है। यह सतत ऋणावेशित सूक्ष्मतर ऋणायन कण उत्सर्जित करती है, जो हमारे लिए लाभदायक अर्थात् धनात्मक ऊर्जा के कारक होते हैं।

जिस स्थान पर फिटकरी रखी होती है, वहाँ रोगों का आक्रमण आसानी से नहीं होता तथा मस्तिष्क प्रायः वैचारिक दृष्टि से स्वस्थ रहता है। फिटकरी घर के वातावरण से उद्वेग को हरती है। अतः प्रत्येक कमरे के किसी भी कोने में ५० ग्राम फिटकरी का एक टुकड़ा अवश्य रखना चाहिए। इससे परिवार में व वहाँ आने-जानेवालों में प्रेम व सौहार्द बना रहता है।

किसी दुकान या प्रतिष्ठान के मुख्य द्वार पर काले कपड़े में फिटकरी बाँधकर लटकाने से बरकत आती है। दक्षिण भारत में अधिकांशतः दुकानों के मुख्य द्वार पर फिटकरी बाँधने का रिवाज लम्बे समय से प्रचलित है। आप भी इसका लाभ उठाइये।

गौचंदन धूपबत्ती का धूप करना तथा कभी-कभी कपूरसहित आरती करना ऋणायनों को बढ़ाता है। आजकल के प्रदूषित वातावरण में अपने घर का वातावरण ऋणायनों से भरपूर रखना स्वास्थ्यवर्धक एवं अत्यावश्यक है।

*

दो दिन में ही पानी मिला !

हमारे गाँव में अकाल पड़ा हुआ था । मैंने नासिक आश्रम में पूज्य गुरुदेव से प्रार्थना की और अपने खेत में 'श्री आसारामायण' का पाठ किया । उसके बाद बोरिंग का काम आरंभ करवाया ।

पानी के लिए बहुत प्रयास करने के बाद भी लोगों को सफलता नहीं मिल रही थी, किंतु मेरे यहाँ बोरिंग करवाने के दूसरे ही दिन पानी निकल आया ! आठ घंटे तक लगातार मोटर चलने के बाद भी पानी कम नहीं हुआ ! 'श्री आसारामायण' में आता है :

एक सौ आठ जो पाठ करेंगे, उनके सारे काज सरेंगे ।

इस पंक्ति की सत्यता का हजारों को अनुभव है, अब हम भी उसमें आ गये ।

- रतन बाबूराव पगा
खड़क ओझर, चांदवड़, नासिक (महाराष्ट्र).

✲

...और खारा पानी मीठा हो गया

ब्यावर (राज.) में मेरे पड़ोसी साधक जयसिंह चारण ने अपने निवास ग्राम - बिलाड़ में कुआँ खुदवाया, किंतु पानी खारा निकला । श्री जयसिंह ने गुरुमंत्र का स्मरण करके, बड़दादा की परिक्रमा करके लाया हुआ जल कुएँ में डाला तो आश्चर्य ! कुएँ का पानी मीठा हो गया ! बड़दादा के यहाँ रखी हुई मिट्टी एवं जल तथा गुरुमंत्र सच्चे श्रद्धालुओं को कैसी मदद करता है ! खारे कुएँ को मीठा करने का सामर्थ्य है - श्रद्धा से गुरुमंत्र-जप में !

सत्य ही कहा है :

श्रद्धापूर्वाः सर्वधर्मा मनोरथफलप्रदाः ।
श्रद्धया साध्यते सर्वं श्रद्धया तुष्यते हरिः ॥

'नारद ! श्रद्धापूर्वक आचरण में लाये हुए ही सब धर्म मनोवांछित फल देनेवाले होते हैं । श्रद्धा से सब कुछ सिद्ध होता है और श्रद्धा से ही भगवान श्रीहरि संतुष्ट होते हैं ।'

गुरुमंत्र को नमन, गुरुदेव को नमन, गुरुदेव की कृपा से शक्तिसंपन्न बड़दादा को नमन ।

- सुरेशचन्द्र शर्मा, ब्यावर (राज.).

* संस्था समाचार *

(निज प्रतिनिधि, ऋषि प्रसाद)

२२ से २८ मई तक टिहरी (हिमालय) में एकांतवास के बाद परम पूज्य बापूजी २९ मई को ब्रह्मपुरी आश्रम (ऋषिकेश) पहुँचे। तत्पश्चात् ३१ मई को हरिद्वार आश्रम और १ जून को काशीपुर (उत्तरांचल) पहुँचे, जहाँ दो दिवसीय सत्संग-कार्यक्रम संपन्न हुआ। २ जून को यहाँ प्रवचन पूर्ण कर पूज्य बापूजी बरेली (उ.प्र.) पधारे, जहाँ ३ से ५ जून तक ज्ञान, भक्ति और योग के अमृत से बरेलीवासी तृप्त हुए।

उल्लेखनीय है कि तन-बदन को झुलसा देनेवाली लू और प्रचण्ड गर्मी ने लोगों के छक्के छुड़ा रखे थे। देर रात तक सड़कें गर्मी उगलती रहती थीं। मैंने ५ जून को दोपहर के समय पूज्यश्री को अखबार पढ़कर सुनाया कि 'अभी एक हफ्ते तक गर्मी से राहत नहीं... कई दिनों से आँधी न चलने के कारण तपिश घट नहीं रही है। मौसम विभाग के अनुसार आनेवाले समय में तापमान ४७ डिग्री सेल्सियस तक जा सकता है।'

फिर पूज्यश्री ने कुछ आश्चर्य से कहा : **''मतलब आँधी से तपिश घटती है।''** फिर तो उसी शाम तेज आँधी चली और बारिश भी हुई। लगातार ऊपर चढ़ता पारा नीचे आ गया। हवा के ठंडे झकोरों से लोगों को राहत मिली। मौसम खुशगवार बना। फिर तो परम पूज्य बापूजी आगामी कार्यक्रमों में जहाँ-जहाँ गये, मौसम खुशगवार व अनुकूल होता ही गया।

यही हमने देखा ७-८ जून को नैमिषारण्य में, १३ से १५ जून तक आयोजित लखनऊ के सत्संग में, २० से २२ जून तक कानपुर में और २३ से २५ जून तक मेरठ में। ४ जून से २५ जून तक यही देखा गया कि पूज्यश्री जहाँ भी गये वहीं सत्संग के एक-दो दिन पहले वही हवा के ठंडे झोंके... प्रकृति देवी का प्रसाद... वही रिमझिम... तथा गर्मी और लू को अलविदा देनेवाला वातावरण बन गया। जैसे जहाँ-जहाँ पुरुष जाय वहाँ-वहाँ उसकी छाया जाती है, वैसे ही जहाँ-जहाँ पूज्यश्री का सत्संग वहाँ-वहाँ पहले ही रिमझिम... खुशनुमा वातावरण... कैसी है उनकी करुणा!

हरिद्वार में इस बार खूब गर्मी थी पर भगवान की कृपा भी खूब थी। कार्यक्रम १५ से १८ मई तक था। वर्षा देवी ने एक दिन पूर्व वहाँ भी शीतलता कर दी। कार्यक्रम पूरा होते ही गर्मी ने फिर तेवर दिखाये लेकिन आगे के कार्यक्रम में फिर वही शीतलता...

नैमिषारण्य (उ.प्र.), ७ व ८ जून : दो दिन तक इस तीर्थभूमि व ऐतिहासिक स्थल नैमिषारण्य में पूज्यश्री ने ज्ञान-गंगा बहायी। पुराणकालीन ८८ हजार ऋषियों की इस तपःस्थली में, अरण्यभूमि में घने वृक्षों के नीचे बैठे धर्मप्राण श्रोताओं को पूज्यश्री के उद्बोधन का दृश्य देखकर पुराणों में वर्णित उस दृश्य की सहज कल्पना स्मृति-पटल पर हो आती थी, जिसमें सूतजी उन हजारों ऋषियों को 'भागवत कथा' का पान करा रहे हैं।

मनु-शतरूपा, महर्षि वेदव्यासजी, सूतजी, शौनकजी आदि अन्यान्य महापुरुषों से सेवित इस भूमि के इतिहास में इस सत्संग ज्ञान-सत्र के बाद आत्मनिष्ठ परम पूज्य बापूजी का नाम भी जुड़ गया है।

राम-रावण युद्ध के दौरान पवनपुत्र हनुमानजी पातालपुरी में अहिरावण का वध कर श्रीराम-लक्ष्मण को कंधे पर बिठाये यहीं गोमती-तट पर प्रकट हुए थे। अनेकानेक गौरवशाली गाथाओं से संपन्न इस भूमि पर आयोजित दो दिवसीय ज्ञान-सत्र में साधु-संत, पूर्णिमा व्रतधारी साधकगण व आस-पास से आये धर्मप्राण श्रद्धालु समुदाय पूज्यश्री की सूत्रात्मक, ओजमयी, हितभरी, कल्याणकारिणी अमृतवाणी के रसास्वादन से तृप्त हुए।

लखनऊ (उ.प्र.), १३ से १५ जून : तीन दिवसीय सत्संग व पूर्णिमा दर्शन महोत्सव में श्रद्धालुओं के विशाल सैलाब के साथ उत्तर प्रदेश के राज्यपाल महामहिम श्री विष्णुकांत शास्त्री, 'विश्व हिन्दू परिषद' के कार्यकारी अध्यक्ष श्री अशोक सिंघल तथा नगर विकास मंत्री (उ.प्र.) श्री लालजी टण्डन भी भक्ति-सागर में निमग्न हुए और नतमस्तक होकर आशीर्वाद भी प्राप्त किये।

'संजय गाँधी स्नातकोत्तर आयुर्विज्ञान संस्थान' में जीवन के लिए संघर्ष कर रहे 'राम जन्मभूमि न्यास' के अध्यक्ष श्री परमहंस रामचन्द्रजी के स्वास्थ्य-लाभ के लिए श्री सिंघलजी ने पूज्यश्री से आशीर्वाद माँगा।

राज्यपालश्री ने पूज्य बापूजी के आगमन को राजधानीवासियों के लिए एक सुखद अवसर बताया। उन्होंने कहा कि 'पूज्य बापूजी के प्रवचन से पहले कुछ बोलना धृष्टता ही है। मैं इतना ही बोलना चाहता हूँ कि हम सभीको संतों की बात सुनने का अभ्यास करना चाहिए। मेरी प्रार्थना यही है कि हम सब श्रद्धा के साथ, विश्वास के साथ पूज्य बापूजी की वाणी का श्रवण करें।'

पूज्यश्री ने अपनी सूत्रात्मक शैली में कहा : **''तुम्हें जो मिला है उसके सदुपयोग से तुम्हारा मंगल होगा, दुरुपयोग से नहीं।**

*** बाह्य चीजों के मिलने से सच्चे सुख का कोई सम्बन्ध नहीं है।**

*** आपके जीवन में कठिनाई आये तो घबराये नहीं,**

सुख-सुविधा आये तो उसमें उलझे नहीं।

※ सुख के भोगी दुःख के शिकार बन जाते हैं। आप सुख के भोगी और दुःख के शिकार न बनो बल्कि सुख-दुःख को साधन बना लो।

※ भोजन बनाते हुए, दुकान-कार्यालय सँभालते हुए, राज्यपाल के पद पर रहते हुए भी आप बुद्धियोगी बन सकते हैं।''

गोण्डा (उ.प्र.), १६ से १८ जून : यहाँ प्रथम दिन श्री सुरेशानंदजी का प्रवचन हुआ। यहाँ पहली बार आयोजित ब्रह्मनिष्ठ पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन में गोण्डावासी बढ़-चढ़कर सम्मिलित हुए। पूज्य बापूजी को अपने बीच पाकर वे लोग फूले नहीं समा रहे थे। भीषण गर्मी ने यहाँ भी अपना रुख बदला, प्रकृति ने अपनी अनुकूलता का संकेत दिया।

कानपुर (उ.प्र.), २० से २२ जून : यहाँ भी प्रथम दिन श्री सुरेशानंदजी का प्रवचन हुआ। परम पूज्य योगनिष्ठ बापूजी ने यहाँ मानव-जीवन में सत्संग की आवश्यकता पर विशेष जोर दिया। पूज्य बापूजी ने कहा : **''यदि जीवन में सत्संग नहीं होगा तो कुसंग होगा, कुवासनाएँ जोर पकड़ेंगी, कुकर्म जोर पकड़ेंगे, कुभावनाएँ जोर पकड़ेंगी। संसार में रोटी की कमी नहीं है लेकिन सत्संग की कमी है। रोटी तो सबको ही मिलती है लेकिन सत्संग के अभाव में आदमी शराबी हो जाता है, कबाबी हो जाता है, जुआरी हो जाता है, शोषक हो जाता है। अपने से बड़ों को देखकर ईर्ष्या करता है, छोटों से घृणा करता है। लेकिन सत्संगी बड़ों को देखकर जलता नहीं है, छोटों को देखकर घृणा नहीं करता। सत्संगियों में ये सद्गुण आ जाते हैं।''**

सनातन धर्म को अपने जीवन में उतारने की प्रेरणा देते हुए संत शिरोमणि बापूजी ने कहा : **''धर्म सहिष्णुता सिखाता है लेकिन ऐसी सहिष्णुता नहीं सिखाता कि धर्मांतरणवाले आपको बेवकूफ बना दें। धर्म जोड़ना सिखाता है, तोड़ना नहीं।''** अंतिम दिन के अंतिम सत्र में इन्द्रदेव ने अपनी प्रसन्नता का इजहार किया और आकाश में बादल मँडराने लगे। बापूजी हँसते हुए मंच पर आये और बोले : **''इन्द्र भी तैयार है और हम भी, मेघ भी बरसेंगे और हम भी बरसेंगे। जिसको जाना है जाय।''** फिर तो धुआँधार बारिश हुई, पर श्रद्धालु सत्संगियों का सैलाब सत्संग-मंडप में डटा रहा। उधर इन्द्रदेव बरस रहे थे तो इधर बापूजी बरस रहे थे। अंतर केवल इतना था कि वे बाहर से भिगो रहे थे और आत्मनिष्ठ बापूजी भीतर से। तमाम भक्त भीगते हुए भी टस से मस नहीं हुए। अलौकिक शांति का अनुभव करते हुए आत्मानंद में सराबोर होते रहे। मेघ तो अच्छे-खासे बरसकर चले गये, लेकिन बापूजी तो दो घंटे तक अंतरात्मा का माधुर्य बरसाते रहे।

मेरठ (उ.प्र.), २३ से २५ जून : जहाँ से आजादी की पहली लड़ाई मंगल पांडे की शहीदी से शुरू हुई और ब्रिटिश शासन की जड़ें हिल गयी थीं, ऐसे १८५७ की क्रांति के उद्गम-स्थल ऐतिहासिक नगर मेरठ के भामाशाह मैदान में पूज्य गुरुदेव का तीन दिवसीय सत्संग-कार्यक्रम संपन्न हुआ।

मानवमात्र के परम हितैषी पूज्यश्री की लोक मांगल्यकारिणी, हृदयग्राही वाणी का रसपान करने, अपने जीवन को आध्यात्मिक ऊँचाइयों से रू-बरू करने बड़ी तादाद में मुसलिम बंधु भी सत्संग में सम्मिलित हुए। वे घंटों पूज्यश्री की आत्मस्पर्शी अमृतवाणी में सराबोर होते रहे। उन्होंने माल्यार्पण कर पूज्यश्री का स्वागत भी किया।

पूज्यश्री ने सांप्रदायिक एकता व सौहार्द का संदेश दिया। सूफी संतों के जीवन पर प्रकाश डालते हुए उनकी अनुभवसंपन्न ज्ञानराशि से लाभान्वित होने की प्रेरणा दी।

योगमर्मज्ञ परम पूज्य बापूजी ने दुःखों से सदा के लिए मुक्ति की युक्ति बताते हुए कहा : **''संसारी वस्तु पाकर कोई निर्दुःख हो जाय, यह संभव ही नहीं है। एम.एल.ए. बनने से, प्रधानमंत्री होने से, सेठ बनने से दुःखों का अंत नहीं होगा। भगवत्स्वरूप को पाये हुए संतों के सत्संग से अपने भगवत्स्वरूप को पहचान लो, दुःख की जहाँ पहुँच नहीं, उस अपने आत्मस्वभाव को जान लो तो दुःखों का अंत हो जायेगा और परमानंद की प्राप्ति होगी।''**

॥ गुरुपूर्णिमा महोत्सव ॥

(१) रजोकरी (दिल्ली) : २९ जून से १ जुलाई २००३, संत श्री आसारामजी आश्रम, हरिजन बस्ती के पीछे, जयपुर-दिल्ली राजमार्ग के पास।
फोन : (०११) २५७२९३३८, २५७६४१६१.

(२) भोपाल (म.प्र.) : ५ व ६ जुलाई २००३, संत श्री आसारामजी आश्रम, बाईपास रोड, गाँधीनगर, भोपाल।
फोन : (०७५५) २७४२५००, २७१३०५५.

(३) सूरत (गुज.) : ९ व १० जुलाई २००३, संत श्री आसारामजी आश्रम, आश्रम रोड, जहाँगीरपुरा।
फोन : (०२६१) २७७२२०१-०२-०३.

(४) अमदावाद (गुज.) : १३ व १४ जुलाई २००३, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू मार्ग, साबरमती।
फोन : (०७९) ७५०५०१०-११.

लखनऊ के सत्संग–समारोह में उ.प्र. के विद्वान राज्यपाल महामहिम श्री विष्णुकांत शास्त्री ने पूज्यश्री का भावभीना स्वागत करते हुए कहा : 'मेरी प्रार्थना यही है कि हम सब श्रद्धा–विश्वास के साथ पूज्य बापूजी की वाणी का श्रवण करें।' पश्चात् उन्होंने दो घंटे सत्संग–श्रवण किया।

सत्संग–अमृत का पान करते हुए वि.हि.प. के कार्यकारी अध्यक्ष श्री अशोक सिंघल एवं विशाल जनसमुदाय।

भक्तों ने नैमिषारण्य में, गुरुज्ञान का पावन पान किया। भक्तिमयी सत्संग–गंगा में, स्नान किया कल्याण किया॥

नैमिषारण्य (उ.प्र.) में पूज्यश्री की सत्संग–गंगा का लाभ ले रहा जनसमुदाय।

R.N.I. NO. 48873/91 POSTAL REGISTRATION. NO. GUJ-1132. LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENSE NO. 207. POSTING FROM AHMEDABAD 2-15 OF EVERY MONTH. ✲ BYCULLA STG. WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO. 236
REGD NO. TECH/47 833/MBI/2003-05 POSTING FROM MUMBAI 9 & 10th OF EVERY MONTH. ✲ FOREIGN POSTING 5 & 6 OF EVERY MONTH FROM AIRPORT PO. - 400099.
✲ DELHI REGD. NO. DL-11513/2003 WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO.- U(C) 232/2003 POSTING FROM DELHI 10-11 OF EVERY MONTH.

मेरठ में भक्तजन उमड़ पड़े, गिनती का रहा नहीं ओर छोर।
भक्तों का भक्तिमय भाव देख, सद्गुरु भी हुए आनंद-विभोर॥

भक्तिमय आरति करत, एकहिं मन अभिलाष। ज्योत से ज्योत जलाओ, प्रभु फैले आत्म-प्रकाश॥